1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No.MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-2, अंक-5, अप्रैल-मई 2019 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

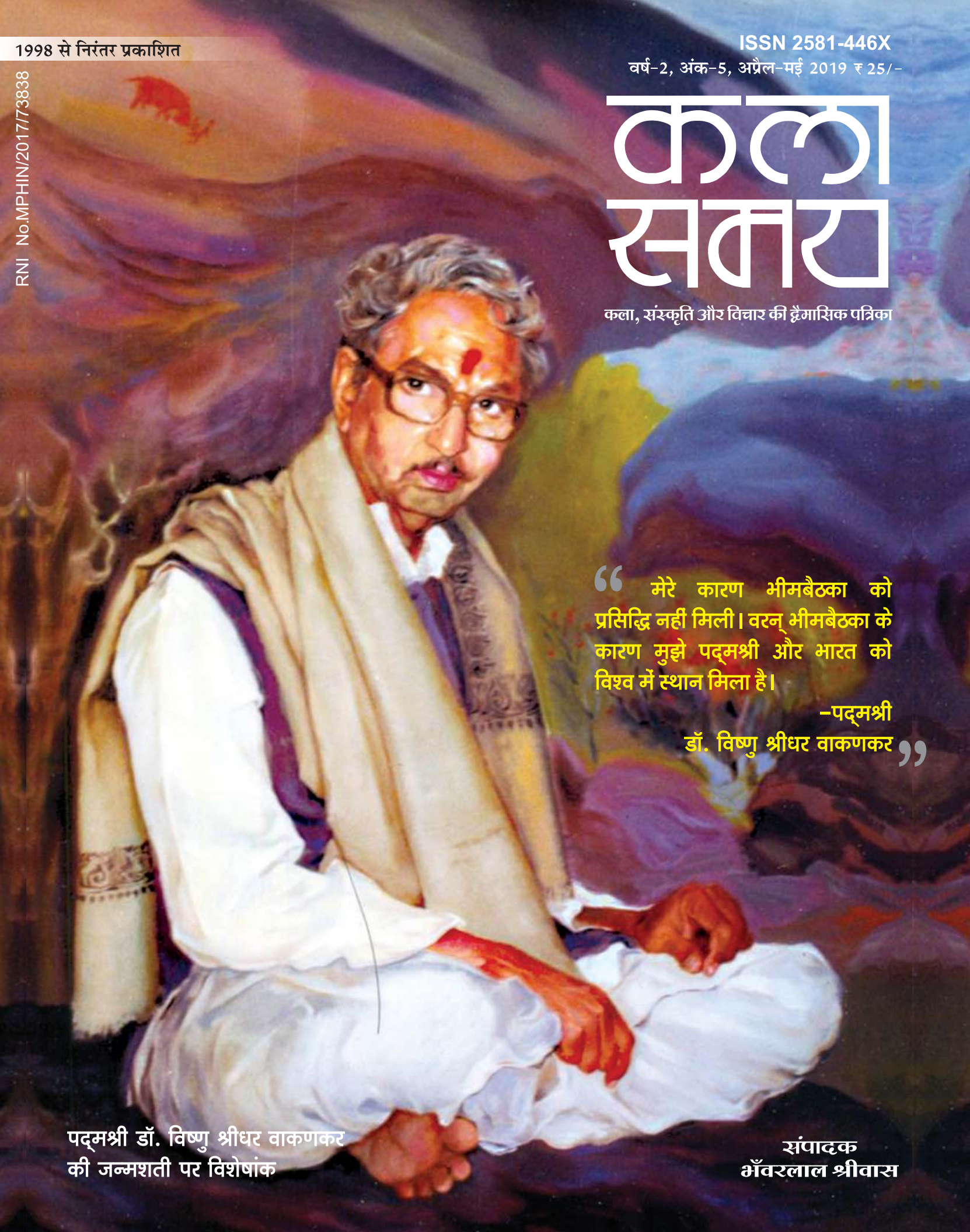

"मेरे कारण भीमबैठका को प्रसिद्धि नहीं मिली। वरन् भीमबैठका के कारण मुझे पद्मश्री और भारत को विश्व में स्थान मिला है।

–पद्मश्री
डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर"

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर
की जन्मशती पर विशेषांक

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

(पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर उपाख्य हरिभाऊ वाकणकरजी को सादर, सविनय एक शब्दांजली)

क्या वाकणकर होना है?

सौ. लक्ष्मी ताई एवं डॉ. वाकणकर जी द्वारा स्वहस्ताक्षरित रेखाचित्र, चित्रकार : संदीप राशिनकर

वर्षों तक
खतरों/उपेक्षाओं से बेखबर
ध्येयनिष्ठ हो
शैलाश्रयों को खोजते
शैलाचित्रों की प्रतिकृतियाँ आकारते
सापेक्ष कालगणना से
पुरातात्विक महत्ता स्थापित कर
विश्व में परचम फहराते
भीमबैठका हो जाना
क्या वाकणकर होना है ?
शैलचित्रों का अन्वेषण करना
उन्हें खोजना
सदियों के अंधेरों से निकाल
उन्हें प्रकाश में लाना
क्या वाकणकर होना है ?
टूटे खपरेलों, टुकड़ों
दबे जिवाश्मों पर जमी
मिट्टी खरोचना, खोदना
मानव जाति की प्रगति जानना
काल को पढ़ना
संस्कृति के विस्मृत इतिहास को
सगर्व विश्व के सम्मुख लाना
क्या वाकणकर होना है ?
कलाएँ जोड़ती हैं
इस मन्त्र के साथ
कलाओं के बहाने
विश्व बंधुत्व के गीत गाना
चलायमान कर कोणार्क चक्र को
संस्कार भारती की अलख जगाना
क्या वाकणकर होना है ?
राष्ट्रपति भवन हो
उच्च अधिकारी या नेता हो
या हो बीहड़ में
संस्कृति की रखवाली करता
वन/पुरा संपदा को सहेजता
आदिवासी, मजदूर या किसान हो
आलथी-पालथी मार
संग सबके सहजता से बतियाना
क्या वाकणकर होना है ?
जानना, जताना, जागृत बनाना
अपने बारे में
पुरा महत्ता/राष्ट्रीय महत्ता के बारे में
बोलचाल की भाषा, बोलियों
में बतियाना या
अंतर्राष्ट्रीय सेमिनारों में
विदेशी विद्वानों की
गलत धारणाओं/ षड्यंत्रों की बखिया
उघाड़ना
क्या वाकणकर होना है ?
अपने हजारों हजार चित्रों में
समेटना, संजोना
पुरा वैभव, शैलचित्र या
शिला लेखों में छिपे पुरातन संवाद
देश-विदेश के
दृश्यचित्रों/व्यक्तिचित्रों/अनुभवों को
या विशाल चित्रों से सिंहस्थ या संस्कार
भारती समागमों
को सँवारना या सजाकर
अपनी चित्रकला का लोहा मनवाना
क्या वाकणकर होना है ?
लुप्तप्राय पुरा महत्त्व की
सरस्वती नदी को खोजना
उसके यात्रा मार्ग को लेखना
श्रमसाध्य परिश्रम व खोजी दृष्टि से
महती सामग्री जुटाना
क्या वाकणकर होना है ?
एक कला दृष्टा, एक तपस्वी
एक मनस्वी, एक पुरातत्वेत्ता
एक चित्रकार, एक संस्कार गुरु
एक कला प्रदर्शनी संयोजक या
किसी भी वैश्विक धरातल/ मंच या चौपाल पर
संत सा निगर्वी हो
संस्कृति प्रबोधक होना
क्या वाकणकर होना है ?
बहुत असंभव, बहुत अशक्य है
यह जानना कि
क्या-क्या होना, कितना-कितना होना
वाकणकर होना है
या सब जगह, सब कुछ होकर भी
निगर्वी हो, मैं कुछ भी नहीं, यह जताना
वाकणकर होना है !!!

संदीप राशिनकर
11-बी, राजेन्द्रनगर, इंदौर-452012 (म.प्र.)
9425314422, 8085359770

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(वर्ष : 21+2) पूर्णांक-98,
वर्ष-2, अंक-5, अप्रैल-मई 2019

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजयशंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
ललित शर्मा
राग तेलंग
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
डॉ. शशि सांखला
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. अरविंद सक्सेना
चन्द्रमोहन सक्सेना
प्रो. कमला कौशिक

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
देवेन्द्र सक्सेना
9414291112
आस्था सक्सेना
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

रेखांकन : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामू भैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
संगीता सक्सेना
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढे (एडवोकेट)

सहयोग राशि

वार्षिक	**: 150 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 175 /-	**(संस्थागत)**
द्वैवार्षिक	**: 300 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 350 /-	**(संस्थागत)**
चार वर्ष	**: 500 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 600 /-	**(संस्थागत)**
आजीवन	**: 5,000/-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 6,000/-	**(संस्थागत)**

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजें)

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सुविधा : 'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

इस बार

- संपादकीय / 5
  युगपुरूष पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर
- आलेख / 6
  डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर : इतिहास पथ के महायात्री / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- साक्षात्कार / 9
  कला एवं पुरातत्व जगत के कीर्तिकलश ''पद्मश्री'' डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर / ललित शर्मा
- आलेख / 13
  सहृदय चित्रकार डॉ. वि. श्री वाकणकर ''पद्मश्री'' / कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
- आलेख / 15
  पुरातत्व के महाप्राण डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर/डॉ. नारायण व्यास
- जीवन परिचय / 17
  पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर (हरि भाऊ)
- संस्मरण / 18
  वाकणकर के मानस पुत्र एवं कला शिष्य: सचिदा नागदेव / सचिदा नागदेव
- आलेख / 20
  अलौकिक शोध-दृष्टि का तपस्वी कला साधक : वि. श्री वाकणकर / संदीप राशिनकर
- परिचय / 22
  भीमबैठका-एक परिचय / संकलन- ललित शर्मा, झालावाड़
- आलेख / 24
  हाड़ौती क्षेत्र की पुरातात्विक सम्पदा में वाकणकर जी का अवदान / डॉ. मुक्ति पाराशर
- आलेख / 26
  संस्कृति साधक : श्री वाकणकर / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
- संस्मरण / 28
  कर्मयोगी डॉ. वाकणकर / डॉ. रेखा भटनागर
- संस्मरण / 31
  इक साधे सब सधे / नवल जायसवाल
- आलेख / 33
  शैलचित्र अन्वेषक : डॉ. वाकणकर / उमेश पाठक
- आलेख / 24
  हाड़ौती क्षेत्र की
- विश्व कविता / 34
  महमूद दरवेश की कविता, अनुवाद : मणि मोहन
  मधुकर अष्ठाना के गीत/ 35
  मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश' की कविताएँ/ 36
  विज्ञान व्रत की ग़ज़लें / 37
- आलेख / 38
  नेमावर का ऐतिहासिक पर्यटन : डॉ. वाकणकर की दृष्टि में / नरेश कुमार पाठक
- संस्मरण / 40
  डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर- एक अद्भुत व्यक्तित्व / राजेन्द्र नागदेव
- संस्मरण / 42
  आत्मीयता का विस्तार / स्मिता नागदेव
- आलेख / 43
  पुरातत्ववेत्ता डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर की एक स्मृति / डॉ. बी.एम. रेड्डी
- आलेख / 44
  डॉ.वि.श्री वाकणकर की हिम्मत / डॉ. अशोक त्रिवेदी
- शोधपत्र / 45
  बूंदी की मुद्रा में युगपरिवर्तन के साक्ष्य / नेहा प्रधान
- आलेख / 47
  हिन्दी सिनेमा के भगीरथ, पितामह दादा साहब फाल्के / डॉ. नम्रता दवे
- आलेख / 54
  ठुमरी, कथक नृत्य और तबले के अन्तर्संबंधों पर एक अंतरदृष्टि / पं. विजयशंकर मिश्र
- आलेख / 57
  परम्परा और प्रयोग की कसौटी पर भारतीय संगीत और नृत्य कितना सही और कितना गलत / डॉ. जया शर्मा
- समवेत
  'तन्हाई का सुकून' का विमोचन सम्पन्न / जनजातियों में गाथा-गायकी पुस्तक लोकार्पित / पाषाण लोक का नागरिक : नीरज अहिरवार / सम द्वारा आयोजित- होरी धूम मच्यो री / अल्लामा इक़बाल की पुण्यतिथि पर यादे इक़बाल में चारबैत मुक़ाबला आयोजित / राज्य संग्रहालय में आयोजित 10 वें स्पंदन सम्मान समारोह में रचनाकार सम्मानित / श्रीमती लक्ष्मी वाकणकर / नये लागों को संगीत से जोड़ने के सद प्रयास / महाराणा कुम्भा संगीत महोत्सव, उदयपुर, (राजस्थान)
- फोटो-दीर्घा / 64
- आपके पत्र / 65
- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में / 66
  निर्मिश ठाकर

इस अंक में विशेष संपादकीय सहयोग

कैलाशचंद्र घनश्याम पाण्डेय
मंदसौर (म.प्र.)

●

डॉ. नारायण व्यास
भोपाल (म.प्र.)

●

ललित शर्मा
झालावाड़ (राज.)

●

राम मेश्राम
भोपाल (म.प्र.)

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - सचिदा नागदेव (तेल चित्र) | **अंतिम आवरण चित्र** - सौजन्य: स्मिता नागदेव | **छायाचित्र** - मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन** - विज्ञान व्रत, मनोहर काजल | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास

युगपुरूष पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

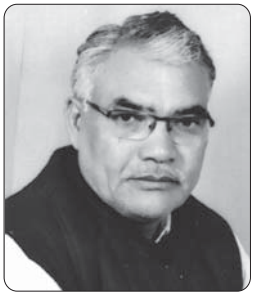

''कठिनाईयों से रीता जीवन मेरे लिये नहीं हैं। मेरे तूफानी मन को यह स्वीकार नहीं। मुझे तो चाहिए एक महान ऊँचा लक्ष्य और उसके लिए उम्रभर संघर्षो का अटूट क्रम। ओ कला! तू खोल मानवता की धरोहर। अपने अमूल्य कोषों के द्वार मेरे लिए खोल। अपनी प्रज्ञा और संवेगों के आलिंगन में मैं अखिल विश्व को बाँध लूंगा। आओ, हम बीहड़ और कठिन यात्रा पर चलें। आओ, क्योकि छिछला निरूद्देश्य और लक्ष्यहीन जीवन हमें स्वीकार नहीं।'' - कार्ल मार्क्स

सच की राहे कभी भी आसान नहीं रही सच का दामन थामकर जो ज़िंदगी के पथरीले पहाड़ लाँघने का हौसला रखते है उनकी यश जयी यात्राएँ इतिहास की यादों में सदा महफूज रहती है।

ज्ञान और कर्म दोनो एक दूसरे के पूरक है, कला साधना एवं ज्ञान साधना दोनो समान हैं। दोनो के लिए श्रद्धा, धैर्य, परीश्रम आवश्यक होते है। किन्तु प्राय: व्यक्ति में दोनो का योग विरल होता है और जब होता है तब एक युग महापुरूष का निर्माण होता है। महापुरूष कोई पैदा नहीं होता वह ज्ञान और कर्म के संयोग से विकसित होता है। ऐसा महापुरूष न केवल स्वयं आलोकित होता है बहुतो को आलोक प्रदान करता है और एक विराट आलोक-पुंज का अमर अंश बन जाता है। श्रेष्ठ शोध कर्ताओं की पहचान उनके शोधकार्य की विशालता से नही प्रामाणिकता से होती है। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुरातत्ववेत्ता कला आचार्य, मुद्राशास्त्री साहित्यकार, अभिलेखविद भाषाविद इतिहासज्ञ, समाज सेवी संस्कृति साधक युग पुरूष पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर और उनका परिवेश देखते है तो किसी ध्येय से प्रेरित होकर जीवन जीने के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ सबके भाग्य में नही होती डॉ. वाकणकर को जीवन में अनेक कठिनाईयो का सामना करना पड़ा किन्तु उन्होंने अंतिम दम तक हार नही मानी वे अपने सुनिश्चित पथ पर निरन्तर अग्रसर होते रहे। अंतिम क्षणों में भी वे कला साधना में जुटे रहे। डॉ. वाकणकर एक यायावर व्यक्ति नहीं परम्परा रहे हैं। ऐसे इतिहास पुरूष के प्रथम जन्म शताब्दी वर्ष के अक्सर पर 'कला समय' का यह छोटा सा प्रयास के पीछे सर्वश्री कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय, डॉ. नारायण व्यास नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, सचिदा नागदेव, ललित शर्मा, श्रीकष्ण जुगनू, संदीप राशिनकर, नवल जायसवाल, राजेन्द्र नागदेव, डॉ. बी.एम. रेड्डी, डॉ. भारती श्रोती, स्मिता नागदेव डॉ. मुक्ति पाराशर डॉ. रेखा भटनागर, उमेश पाठक, नरेश कुमार पाठक, अशोक त्रिवेदी इत्यादि।

ये वे लोग है जिनके साथ डॉ. वाकणकर जी ने अपने सृजन के स्वर्णिम काल में इनके साथ रहकर सृजनरत रहे इसमें उनके शिष्य, मित्र, सहयोगी या फिर पारिवारिक संबंध वाकणकर जी के रहे ये सब किसी न किसी रूप में डॉ. वाकणकर जी से जुड़े उनके संस्मरण उनकी उपलब्धियों, उत्खननों, खोजों, देश-विदेशों की यात्रा सेमिनारों के लिए शोधपत्र लुफ्त वैदिक सरस्वती की खोज, रेखाकंन, चित्रकारी भीम बैठका की खोजकर विश्व के सांस्कृतिक मानचित्र पर अंकित कर दिया वे विरल साधना पुरूष थे उनकी तपस्या त्याग पर भारतवर्ष को गर्व हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे यही वह व्यक्ति है जिसके शब्द प्रमाण है डॉ. वाकणकर हमारे बीच आज भी किसी न किसी सृजन के माध्यम से जीवित है एक आदर्श पुरूष के रूप में देश का कोना-कोना उनके नाम की गरिमा से झंकृत है। डॉ. वाकणकर एवं सौ. लक्ष्मी वाकणकर अद्वितीय दम्पत्ति थे। वे हमेशा सादा जीवन उच्च विचार की परम्परा के पुरूष थे उनकी बड़ी विशेषता यह थी कि 'कथनी और करनी' जो कहा वो पूरा किया साहसी इतने कर अनेको बार जंगली जानवरों से उनका वास्ता पड़ा पर वे अपने पथ पर तटस्थ रहे। खाने की कभी चिंता नहीं की उबले आलू, कन्द-मूल, सेव-परमल इनका प्रिय भोजन रहा उन्हें लकवा का भी असर हुआ पर वह भी उनका पथ नहीं रोक सका आपने भारती कला भवन की स्थापना कर ऐतिहासिक नगरी उज्जैन को भारतीय कला जगत में एक अलग पहचान दिलाई कला समय की टीम 26अप्रैल 2019 को डॉ. वाकणकर की खोज भीमबैठका को करीब से देखने और आज की स्थिति की पड़ताल करने भीमबैठका गई टीम में प्रमुख रूप से डॉ वाकणकर की शिष्या डॉ. रेखा भटनागर और उनके शिष्यों में ऊषा लोखन्डे, वर्षा रत्नाकर, नीरज सक्सेना तथा कला संपादक हरीश श्रीवास सहित मैं स्वयं इस शोध पूर्ण यात्रा में सम्मिलित था। हम लोगों ने डॉ. वाकणकर के जन्मशती वर्ष में भीमबैठका में कार्यशाला रखी जिसमें डॉ. भटनागर के मार्गदर्शन में कलाकारों ने साडियों और छतरीयों पर भीम बैठका की प्रतिकृतियाँ उकेरी इस अवसर पर कविता पाठ भी किया। सभी ने अपना रचनापाठ एवं पेटिंग के माध्यम से डॉ. वाकणकर को याद कर उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की।

डॉ. वाकणकर जैसे व्यक्तित्व को एक अंक में समेट पाना यह कार्य असम्भव है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जिन-जिन महान विभूतियों का हमें सहयोग मिला उनके हम हृदय से आभारी है। हमेशा की तरह हमें आपकी प्रतिक्रिया का इंतजार रहेगा।

-भँवरलाल श्रीवास ■

आलेख

डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर : इतिहास पथ के महायात्री

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

यूँ तो सृष्टि मनुष्य के रूप में नित्य असंख्य आलेख लिखती और मिटाती है लेकिन कुछ आलेख, आलेख नहीं होते वे शिलालेख होते हैं जो सृष्टि, समय के वक्ष पर लिखती है। ये शिलालेख ऐसे प्राणवान शिलालेख होते हैं जो इतिहास की निधि और भविष्य निधि की विरासत बन जाते हैं। देह उनके लिए गौण होती है इसलिए कि इनकी सृजन यात्रा में इनकी देह कभी बाधा नहीं बनती। देह में रहते ये रचते हैं और देह से परे होने के बाद ये रचाव के राजपथ बन जाते हैं।

स्व. विष्णु श्रीधर वाकणकर हमारी उजली विरासत के ऐसे ही उजले राजपथ हैं जो पीढ़ियों को उनके सार्थक गंतव्य तक पहुँचाने की सामर्थ्य रखते हैं।

यह वर्ष डॉ. वाकणकर का जन्मशती वर्ष है। वे 4 मई 1919 को नीमच में जन्मे थे तथा 3 अप्रैल 1988को उनका निधन हुआ। उन्होंने अपना पूरा जीवन कर्मयोगी की भाँति जिया। उन्होंने कला, संस्कृति और पुरातत्व को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया था। प्रसिद्ध पुरातत्वविद् डॉ. एच.डी. सांकलिया जो डेक्कन कॉलेज, पुणे के पुरातत्व विभाग के प्रमुख थे, के मार्गदर्शन में उन्होंने पी.एच.डी. की। यह उपाधि उन्हें सन् 1973 में पूना विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। उनके शोध प्रबंध का शीर्षक है, 'पेन्टेड रॉक शेल्टर्स ऑफ इंडिया'। इसका प्रकाशन संचालनालय, पुरातत्व, अभिलेखागार एवं संग्रहालय द्वारा वर्ष 2005 में किया गया।

डॉ. वाकणकर की विश्वव्यापी प्रसिद्धि का कारण उनके द्वारा वर्ष 1975 में भीम बैठका समूह की गुफाओं की खोज का किया जाना था। इसके अलावा उन्हें विश्वव्यापी प्रसिद्धि सरस्वती नदी की खोज के संबंध में प्राप्त हुई। डॉ. वाकणकर ने बिना किसी अपेक्षाभाव के पूरे मालवा में ऐतिहासिक स्थलों का उत्खनन किया। मनोटी, इन्दरगढ़, कायथा, दगवाड़ा, रुणिजा तथा नागदा से लेकर मंदसौर, जावद और नीमच तक के क्षेत्रों में उन्होंने उत्खनन कर वहाँ के अनजाने इतिहास को उद्घाटित किया। डॉ. वाकणकर ने मालवा की स्थापत्य, शिल्प और चित्रांकन की परम्पराओं पर गहरी शोध की तथा अनेक शोध-पत्र प्रकाशित किए। उन्होंने उज्जैन के सिंधिया प्राच्य शोध संस्थान में रहते सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि इस संग्रहालय में अनेक दुर्लभ पांडुलिपियों को संग्रहीत कर उनका अध्ययन किया। वे 1975 में पद्मश्री से भी अलंकृत किए गए। डॉ. वाकणकर की एक विशेषता यह थी कि वे बहुत अच्छे चित्रकार थे इसलिए वे पुरातात्विक स्थलों का चित्रांकन भी करते थे, ठीक नर्मदा के अमर यात्री स्व. अमृतलाल बेगड़ की तरह जिन्होंने नर्मदा के प्रवाह व उसके तटों पर बसे हुए जनजीवन को अपनी रेखाओं में जीवंत कर दिया है।

डॉ. वाकणकर ने नर्मदा किनारे नेमावर के जंगलों में भी निरंतर भ्रमण कर वहाँ की पुरा सम्पदा को उद्घाटित किया। वर्ष 1956में वे ट्रेन से भोपाल से इटारसी जा रहे थे तभी होशंगाबाद के पास उन्हें पहाड़ियाँ दिखाई दीं और उन्हें लगा कि यहाँ ज़रूर कुछ ऐसा होगा जो इतिहास में अनूठा होगा। वे अगले ही स्टेशन पर उतर गए तथा उन पहाड़ियों और जंगलों में घूमने लगे। उन्हें वहाँ अनेक गुफाएँ दिखाई दीं जिनमें से पहली ही गुफा में उन्हें शैलचित्र दिखाई दिए जिनकी कार्बन डेटिंग करने पर यह पाया गया कि ये तो तीस हजार वर्षों से भी अधिक पुराने हैं। इन्हीं जंगलों में उन्हें ये बुद्ध स्तूप भी मिले जो तब बनाए गए होंगे जब सम्राट अशोक का कारवां वहां से गुज़रा होगा। वहीं उन्हें राजा

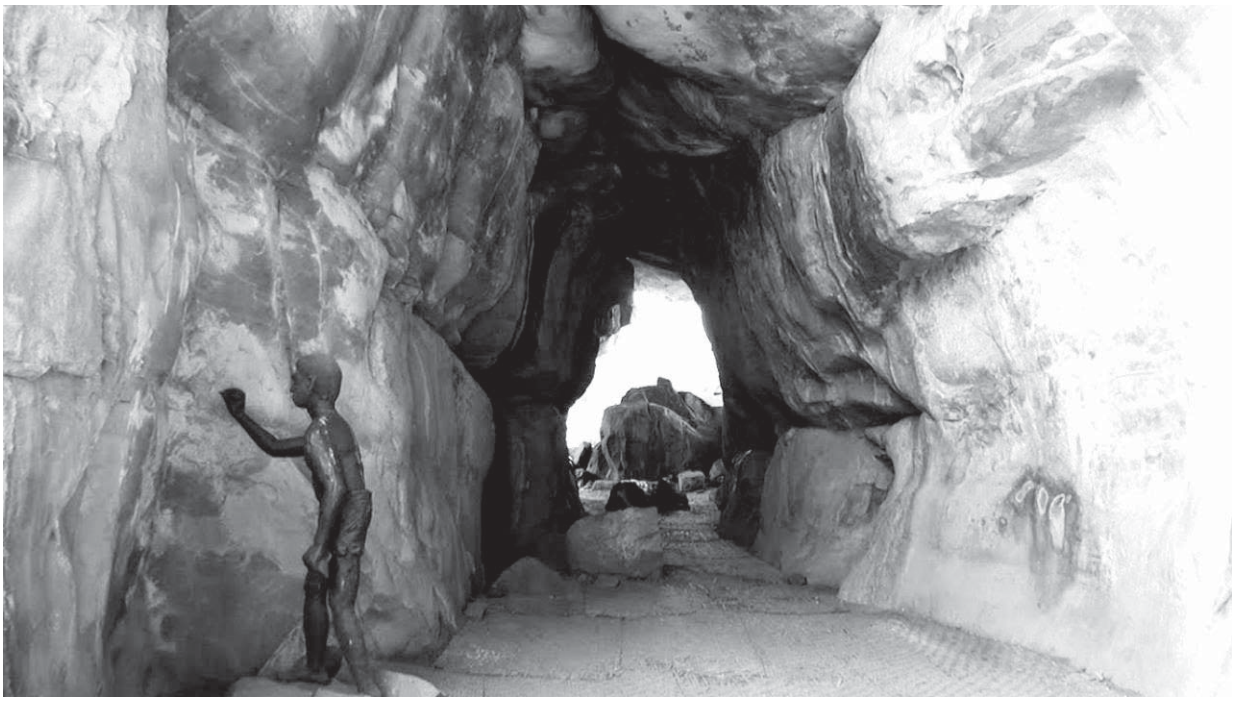

भोज के द्वारा बनाए गए बाँध के अवशेष भी दिखाई दिए। शायद इन महान पुरातात्विक अवशेषों को डॉ. वाकणकर की ही प्रतीक्षा थी। भीम बैठका की गुफाएँ तो मानव इतिहस की मानो शृंखलाबद्ध कथाएँ हैं। वहाँ आदिमानव के रहने की पुष्टि तो होती ही है साथ ही उस काल से लेकर आगे के समय तक ये गुफाएँ मानव का आवास बनी रहीं, इस तथ्य की भी पुष्टि होती है। यदि यहाँ आदिमानव के द्वारा बनाए गए प्रागैतिहासिक शैलचित्र हैं तो शुंग शासकों के समय अपने अविजित साम्राज्य की घोषणा के रूप में भेजे जाने वाले अश्वमेघ के अश्व का अंकन भी दिखाई देता है।

उन्होंने इन गुफाओं की खोज अनेक वर्षों तक की। लगभग पचास वर्ष तक वे जंगलों और पहाड़ों में निरंतर घूमते रहे, वहां गुफाओं में बने शैलचित्रों को खोजकर उनका रेखांकन करते रहे तथा साथ-ही-साथ आदिवासी क्षेत्रों में सामाजिक तथा शैक्षणिक उत्थान के लिए निरंतर प्रयास करते रहे। डॉ. वाकणकर शैलचित्रों के इतिहास पुरुष के रूप में विश्वविख्यात हैं। इस विषय पर न केवल उन्होंने विस्तार से लिखा अपितु निरंतर व्याख्यान दिए तथा इन चित्रों की प्रदर्शनी भी लगाई। वर्ष 1976में प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान आर.आर. ब्रुक्स के साथ उन्होंने शैलचित्रों पर भी एक पुस्तक लिखी। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग में उत्खनन निदेशक के पद पर वे लम्बे अरसे तक पदस्थ रहे तथा इसी बीच उन्होंने भीम बैठका पर विस्तृत शोध कार्य किया। आज भीम बैठका विश्व विरासत के रूप में जाना जाता है। यहाँ सात सौ से अधिक शैलाश्रय हैं जिनमें चार सौ शैलाश्रय चित्रों से सज्जित हैं।

डॉ. वाकणकर को सरस्वती नदी की खोज के संबंध में श्रेय दिया जाता है। वास्तव में सरस्वती को अंत:सलिला माना जाता है। अर्थात् ऐसी नदी जो अब विलुप्त हो गई लेकिन धरती के नीचे प्रवहमान है। डॉ. वाकणकर का मानना था कि ऋग्वेद में वर्णित कई नदियों में सरस्वती ही प्रमुख थी तथा आर्यों का आदिदेश इसी घाटी में था। ऋग्वेद के नदी सूक्त में शतुद्रि अथवा सतलुज सहित विपाशा या व्यास, रावी अथवा परुष्णी, चिनाब, झेलम अथवा वितस्ता, सिंधु, गोमलु, कुर्रम तथा कुभा या काबुल तथा श्वेता या स्वात जैसी नदियों का वर्णन आता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेदिक काल में इसी भूभाग में हमारे पूर्वज रहते थे। यदि वे यूरोप से आए होते तो उनमें वहाँ की नदियों का वर्णन होता। डॉ. वाकणकर ने लुप्त हुई सरस्वती के भूमिगत मार्ग को सेटेलाइट की मदद से खोजा। उन्होंने इतिहास संकलन परियोजना के माध्यम से सरस्वती के संबंध में शोध आरंभ की तथा अनेक समर्पित शोधार्थियों के एक दल के साथ सरस्वती नदी के किनारे-किनारे उन्होंने एक माह लम्बी सर्वेक्षण यात्रा आरंभ की। इसमें हिमनद विशेषज्ञों से लेकर पुरातत्वविद्, लोक कलाकार और छायाकार सम्मिलित थे। किन्तु उनके असमय निधन के कारण यह परियोजना अपने अंतिम पड़ाव तक नहीं पहुंच पाई। उन्होंने अपनी यात्रा आदिबद्री से आरंभ कर गुजरात के कच्छ के रण पर समाप्त की। अब यह सिद्ध हो चुका है कि यमुना नगर जिले के आदिबद्री में सरस्वती का उद्गम स्थल है। यहाँ के मुगलवाली गाँव में सात फीट नीचे तक खुदाई कर नदी की जलधारा को भी निकाल लिया गया है। इस प्रकार डॉ. वाकणकर के द्वारा जो खोज की गई व निष्कर्ष निकाले गए उनकी अब पुष्टि हो रही है।

उनकी प्रतिभा बहुआयामी थी। वे ऊर्जा के चलते-फिरते

पुंज थे। वे जब कभी सर्वेक्षण करते तो अपने साथ इतिहास के युवा विद्यार्थियों को जोड़ते। उन्होंने कहानियों भी लिखीं तथा आर्यों के भारत आगमन को लेकर प्रामाणिक रूप से अपने विचार रखे। उन्होंने उज्जैन में एक शोध संस्थान की स्थापना की जिससे युवा विद्यार्थी तथा शोधार्थी जुड़े व जिन्होंने उनके मार्गदर्शन में कार्य किया।

आज इतिहस लेखन इसलिए महत्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग के कारण शोध अधिक प्रामाणिक होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से जो पहले इतिहास लिखा गया उसमें अनुमान की संभावनाएँ अधिक हुआ करती थीं जो अब प्राय: नहीं हैं। इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा में यह वैज्ञानिक दृष्टि विद्यमान रही है तथा वर्ष 1967 में प्रख्यात इतिहासकार डॉ. आर.सी. मजूमदार ने हेरिस मेमोरियल लेक्चर्स में इस तथ्य को रेखांकित भी किया था तथा उन्होंने इस यूरोपीय अवधारणा का खंडन किया था कि भारतीय इतिहास लेखन कथाओं और कल्पनाओं पर प्राय: आधारित है। हमारे यहाँ 'राजतरंगिणी' जैसे कश्मीर के इतिहास को प्रगट करने वाले वैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गए इतिहास ग्रंथ हैं। ऐसे इतिहास ग्रंथों के मूल में मुख्यत: ज़मीनी खोज का तत्व विद्यमान रहता है। ग्रंथालयों में बैठकर या मात्र अनुमान के आधार पर लिखे गए इतिहास ग्रंथ कभी वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न नहीं हो सकते। आज के इतिहास लेखन की एक और दूसरी विशेषता है उसका अंर्तअनुशासित होना। इतिहास, साहित्य और कल के अनुशासनों से भी जुड़ा हुआ है। इसलिए इतिहास लेखन आज कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. वाकणकर जैसे महान इतिहासकार आज के इतिहास लेखकों के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं। जितना ज़मीनी कार्य डॉ. वाकणकर ने किया उसके जैसे दूसरे उदाहरण बहुत कम हैं। वे निरंतर शोध करने वाले तथा बिना किसी अपेक्षाभाव के अपने कार्य में संलग्न रहने वाले अन्वेषक थे। उन्हें कभी किसी पुरस्कार या सम्मान की अपेक्षा नहीं थी। वे जीवनभर अपने इसी कार्य में संलग्न रहे तथा यही कार्य करते-करते उन्होंने अपनी अंतिम साँसें लीं। उनका निधन तब हुआ, जब वे व्याख्यान देने विदेश गए हुए थे।

डॉ. वाकणकर का अवदान जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, साहित्य के क्षेत्र में भी था और उन्होंने यह चेष्टा की कि किस प्रकार साहित्य, कला और इतिहास के अंर्तसूत्रों को जोड़ा जाए। उनहोंने मालवा में भित्तिचित्रों की भी खोज की। जब मैं, मालवा के भित्तिचित्रों के दस्तावेज़ीकरण के कार्य में संलग्न हुआ तब डॉ. वाकणकर का शोध कार्य मेरा पथ प्रदर्शक बना। पूरे मालवा के एक-एक गाँव में घूमकर उन्होंने भित्तिचित्रों के संबंध में जानकारियाँ जुटाईं। यही कार्य उन्होंने मालवा के शिल्पों को लेकर भी किया। फिर हमारे प्राचीन ग्रंथों के संदर्भों को जोड़ते हुए उन्होंने अपने निष्कर्ष दिए। उन्होंने उज्जयिनी के भित्तिचित्रों के संबंध में विशेष सर्वेक्षण किया। उन्हें एक भित्ति खण्ड गुप्तकाल का भी मिला, किन्तु उसके संबंध में अब कोई जानकारी नहीं मिलती। उज्जैन के अनादिकल्पेश्वर मंदिर में भित्तिचित्र थे जो अब विद्यमान नहीं हैं। इस मंदिर के भित्तिचित्रों पर चूना पोत दिया गया था लेकिन डॉ. वाकणकर को लगा कि इस चूने की परत के नीचे अंकन होना चाहिए इसलिए उन्होंने मंदिर की बाहरी भित्ति पर लगी चूने की परत को खुरचना आरंभ किया और आकृतियाँ उभरने लगीं। जब यह भित्ति सामने आई तो कलाजगत आश्चर्यचकित रह गया। यहाँ मिले भित्तिचित्रों को सात भागों में विभक्त किया गया। डॉ. वाकणकर ने मंदिर के बाहरी द्वार, सभागृह के गुम्बद तथा मध्य कक्ष की छत पर किए गए अंकनों को खोजा और इनकी शैली का निर्धारण किया। उन्होंने माना कि इन भित्तिचित्रों पर राजपूत प्रभाव है तथा ये राजपूत और मालवी शैली के मिश्रण से बने अवन्ति कलम के चित्र हैं। कला के इतिहास में अवन्ति कलम की खोज एक मौलिक खोज थी। डॉ. वाकणकर को नि:संदेह यह श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने राजपूत कलम के मालवा की देशज कलम से समन्वय को खोज निकाला तथा इस कलम में मराठा प्रभाव को भी रेखांकित किया। अवन्ति कलम के नामकरण तथा उसकी विशेषताओं को उजागर करने का श्रेय डॉ. वाकणकर को ही दिया जाना चाहिए।

डॉ. वाकणकर ने मालवा के अपने सर्वेक्षण में जो भित्तिचित्र खोजे थे उनमें से अधिकांश भित्तिचित्र अब विद्यमान अब विद्यमान नहीं हैं, किन्तु उनके प्रयासों के कारण उनके संदर्भ हमारे पास हैं। यह कलाजगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

उन्होंने अनेक शोध-पत्र लिखे, व्याख्यान दिए तथा प्रदर्शनियाँ लगाई। उनकी जन्मशती वर्ष में यदि उनके द्वारा किए गए इस कृतित्व को समेकित रूप में प्रकाशित किया जा सके तो यह एक अमूल्य निधि इतिहास, साहित्य और कला के क्षेत्र में कार्य करने वाले शोधार्थियों तथा विद्यार्थियों के लिए होगी। उनके इस जन्मशती वर्ष में यदि नई पीढ़ी के जिज्ञासु शोधार्थियों को केवल उनकी वैज्ञानिक दृष्टि के उपयोग के संबंध में ही अवगत करा दिया जाए तथा उनकी शोध प्रक्रिया के बारे में जानकारी दे दी जाए तो यह भी अपने आप में एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

डॉ. वाकणकर लीक से हटकर कार्य करने वाले पुरातत्ववेत्ता, इतिहासविद् तथा संस्कृतिविद् थे। उनके समग्र अवदान के संबंध में अभी मूल्यांकन नहीं किया गया है। यदि मूल्यांकन न भी हो, किन्तु जो उन्होंने किया उसका परिचय भर भी नई पीढ़ी के शोधार्थियों को मिल जाए तो इसके कारण शोध के अनेक पथ निर्मित होंगे जिन पर यात्राएँ आरंभ हो सकेंगी।

डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर जैसे अनवरत यात्रा करने वाले महायात्री के जीवन का यही सबसे बड़ा संदेश है।

– 85, इंदिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केसरबाग रोड,
इंदौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

■

100 वाँ वाकणकर जयन्ती वर्ष 2019 ई.

कला एवं पुरातत्व जगत के कीर्तिकलश ''पद्मश्री'' डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

ललित शर्मा
इतिहासविद्

लेखक डॉ. वाकणकर से उन दिनों (1986-1988ई.) काफी सम्पर्क में रहे (शिष्य रूप में) डॉ. वाकणकर के स्वर्गवास से पूर्व उन्हीं के भारती कला भवन में हुई महत्वपूर्ण भेंटवार्ता के प्रमुख अंश : सम्पादक

हमारे देश में सन्तों, तपस्वियों और विद्वानों को ही वास्तविक महापुरुष की संज्ञा दी जाती है। इसलिए भारत में विद्वानों और आचार्यों को ही नमन किया जाता है। समाज में वे ही वन्दनीय होते हैं और आदर के पात्र भी। चरण भी उन्हीं के पखारे जाते हैं और उनके चरणों की रज मस्तक पर लगायी जाती है। इसी परम्परा में भारतीय कला और पुरातत्व जगत के कीर्तिकलश डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर भी रहे हैं जिन्होंने कभी भौतिक साधनों को अर्जित कर समाज में महान होने का मुकुट धारण नहीं किया। उन्होंने अपने जीवन में ना तो किसी के आगे दस्तक दी और ना ही आकांक्षा की तथा ना ही उस ओर अपना मन बनाया। अपितु सब कुछ लुटाकर उन्होंने संस्कृति, कला और पुरातत्व की सेवा की।

4 मई, सन् 1919 ई. को मालवा के नीमच में जन्मे विष्णु श्रीधर वाकणकर स्वयं बड़े बने परन्तु कभी उन्होंने आसमान नहीं देखा अपितु वह स्वत: ही घाव भरने उनके समीप आया। उत्सर्ग व संवेदनशीलता की महान परिकल्पना के साक्षात् स्वरूप डॉ. वाकणकर ने चित्र, मूर्ति के साथ चिंतन और विचार की समग्र संस्कृति को अंकित किया। 'सादा जीवन उच्च विचार' के साथ उनका अन्वेषण और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मानों एवं अपार लोकप्रियता को प्राप्त करने के पश्चात् भी अहंकार और प्रमाद कभी उनके पास नहीं आया।

डॉ. वाकणकर साथ में ललित शर्मा

विद्वता, सौम्यता, सादगी, भोलापन, सहृदयता तथा मन की निर्मलता के विशिष्ट गुण उनकी लोकप्रियता के आधार स्तम्भ थे। काल ने उनके जीवन में कई बार आघात किये थे, परन्तु वे 'वंचिका' देकर हर बार अपनी चिर परिचित मुस्कान लिये कर्म क्षेत्र में सन्नद्व दिखाई दिये। लक्ष्य संधान के प्रति उनकी एकाग्रता और महान् पुरुषार्थ का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है कि प्रशांत हिन्दू सम्मेलन में अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिनते समय वे यह उद्घोष कर रहे थे कि - ''हमारा लक्ष्य केवल निर्वाण या मोक्ष प्राप्त करना ही नहीं था किन्तु अभ्युदय तथा भौतिक समृद्धि भी प्राप्त करना था। इसी विराट दृष्टिकोण के कारण हमारे पुरखे हिमालय की बर्फीली चोटियों को भी पार कर गये थे। उन्होंने समुद्र की उत्ताल तरंगों पर यात्रा कर नये-नये प्रवेश द्वार ढूंढ निकाले और संसार में आर्य बनाने का प्रयास किया था। यह आर्य बनना मूलत: सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित होना था।''

ऐसे महान् विचार को समर्पित डॉ. वाकणकर सचमुच भारत की संत परम्परा के जीवन्त उदाहरण थे। वे पहाड़ों और जंगलों में कुदाली और फावड़ा चलाते तथा घर पर तूलिका से प्रकृति और मानवीय जीवन के रंग उकेरते थे। ज्ञान के वे अक्षय कोष थे। पद्मश्री की उपाधि, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन का पुरातत्व प्रमुख का पद, विदेश यात्राएँ अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा कभी उनके जीवन में बाधक नहीं बनी। वे सचमुच में बहुत बड़े आदमी थे। उनके बड़प्पन के समक्ष कोई भी नतमस्तक हो जाता था पर वे उसे समान स्तर पर बैठाकर बात करते थे। आत्मीयता का ऐसा विस्तार उनके जीवन में था और ऐसी चर्चा से उन्हें आत्मीय सुख मिलता था।

भारती कला भवन, शैलचित्र शोध संस्थान, उज्जैन के संचालक डॉ. वाकणकर अखिल भारतीय कालिदास चित्र व मूर्ति कला प्रदर्शनी, उज्जैन के संस्थापक भी रहे। 1061 से 1963 ई. तक वे फ्रांस सरकार की स्कॉलरशिप के अन्तर्गत फ्रांस में रॉक पेन्टिंग की शोध हेतु गये थे। 1963 ई. में उन्होंने इसी कला के तहत दोराबजी टाटा ट्रस्ट की शोधवृत्ति पर यूरोप का पुरातात्विक भ्रमण किया। 1966ई. में अमेरिका के आमंत्रण पर उन्होंने वहाँ के शैलचित्रों का वैज्ञानिक अध्ययन कर उनकी प्रमाणिकता प्रस्तुत की। 1984 ई. में उन्होंने अमेरिका में 'विश्व को भारतीय संस्कृति की देन' पर विशाल कला प्रदर्शनी एवं व्याख्यान का आयोजन किया तथा 'माया' और 'अजटैक' (मैक्सिको) सभ्यता से भारतीय सभ्यता का तुलनात्मक अध्ययन किया।

भारत में उन्होंने 1955 से लेकर 1980 ई. तक चम्बल, नर्मदाघाटी, असम व दक्षिण भारत में पुरातत्वीय सर्वेक्षण के दौरान पदयात्रा कर अनेक पुरास्थलों को खोजा। उन्होंने 1955 ई. में नवादाटोली, महेश्वर, 1959 ई. में इन्द्रगढ़, 1960 ई. में मनौटी, आवर तथा 1961 से 62 ई. तक रोम, इम्फाल तथा फ्रांस में पुरातात्विक सर्वेक्षण किया। 1966ई. में उन्होंने मालवा के कायथा का प्रसिद्ध उत्खनन किया। इन्दौर, दंगवाड़ा, कसरावद तथा रूनीजा में उनके द्वारा किये उत्खनन से मालवा की प्राचीन संस्कृति में नवीन अध्याय जुड़े।

शैलचित्रों की खोज में उन्हें विशेष महारथ हासिल थी। भोपाल के निकट भीम बैठका की खोज कर उन्होंने भारतीय पुरातत्व को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित किया था, वहीं उन्होंने शिवालिक की दुर्गम पहाड़ियों से लेकर अरब सागर तक लगभग 4000 किमी की पैदल यात्रा कर अन्त:गर्भा वैदिक विलुप्त सरस्वती नदी की खोज से भारत को परिचित कराया। इन्हीं विराट खोजों पर उन्हें भारत सरकार ने 1974-75 में ''पद्मश्री'' से समलंकृत किया। उन्होंने भीमबैठका की गुफाओं पर 'ए-लास्ट पैराडाईज' ग्रन्थ लिखकर विश्व की प्राचीन गुफाओं में इन गुफाओं के महत्व को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने अपने शोध जीवन में लगभग 4000 से अधिक शैलचित्रों की खोज की। उनके द्वारा उज्जैन में स्थापित भारती कला भवन (वाकणकर न्यास) आज भी उनके द्वारा संग्रहित चित्रों, मुद्राओं, मूर्तियों तथा शिलोखों का एक उत्कृष्ट संग्रहालय है जिसमें भारतीय संस्कृति एवं कला की झलक परिलक्षित होती है। 1988ई. में वे सिंगापुर (जापान) गये थे और वहीं 3 अप्रेल को भारतीय पुरातत्व जगत की यह महान हस्ती इतिहास के पन्नों में समा गई।

● **शैलाश्रयों के प्रति आपका रुझान कब व किन परिस्थितियों में हुआ ?**

– सन् 1950 ई. में शैलाश्रयों की ओर मेरा रुझान हुआ था, जब मैं भोपाल में मनुआ भांग स्थान की टेकरी पर घूमने गया था। वहाँ मैंने एक गुफा देखी, उत्सुकतावश मैं उसमें प्रवेश कर गया। देखा तो अन्दर एक विशाल चट्टान पर गेरूए रंग का शेर बना हुआ था। जिज्ञासावश उसका चित्र लेकर मैंने बाद में शोध किया, तो वह आदिमानव द्वारा चित्रित शैलाश्रय था। बाद में अधिक उत्सुकतावश मैंने पुन: उक्त स्थान का व्यापक सर्वेक्षण कर 19 गुफाओं में अनेक शैलाश्रय खोजे। 1953-54 ई. में रामपुरा-भानपुरा के समीप जलोद ग्राम में सर्वेक्षण के दौरान मुझे एक से डेढ़ लाख वर्ष पूर्व के आदिमानवकालीन हथियार प्राप्त हुए। रामपुरा में भी मुझे 5,00,000 वर्ष पूर्व के प्राचीन पाषाण के औजार मिले थे। निकटवर्ती मनौती ग्राम में खुदाई के दौरान मुझे हड़प्पायुगीन संकेत भी प्राप्त हुए थे। 1954 ई. में ही झालावाड़ के पास गागरोन की प्राचीनतम बलिण्डा घटी की पर्वतीय गुफा में मुझे काले रंग के हिरण का शैलाश्रय प्राप्त हुआ था जो मध्याश्म काल (4000 से 10000 वर्ष पूर्व) का है।

● **शैलाश्रय आपकी भाषा में क्या है और ये किस प्रकार इतिहास के बन्द पृष्ठों को उजागर करते हैं ?**

– शैलाश्रय गुहा मानवों द्वारा लाल, काले तथा गेरूए रंग से बनाए गए चित्र हैं, जिनमें उनके उत्तरोत्तर विकास का ज्ञान होता है। शैलचित्रों की उपलब्धि ने प्रागैतिहासिक मानव के जीवन विकास और कला के भावों को समझने में अपना अपूर्व योगदान दिया है। ये कला चित्र अप्रत्यक्ष रूप से आदिमानव के स्वभाव, मनभावना, कला और उसके क्रिया कलापों के साथ भाषा के विषय में बहुत प्रकाश डालते हैं। प्राग युग में 40000 वर्ष पूर्व का गुहामानव जो अपने साथी जानवरों तथा होने वाली घटनाओं को देखा करता था तथा वह उनके चित्र बनाया करता था। यही चित्र कालान्तर में प्रागैतिहासिक शैलाश्रय कहलाए। क्योंकि इतिहास का आरम्भ वेदों के आधार पर 40000 से 60000 वर्ष पूर्व का माना गया है। यही चित्र इतिहास के अग्रपृष्ठों में समाविष्ट होकर इतिहास पूर्व के अर्थात् प्रागैतिहासिक कहलाते हैं।

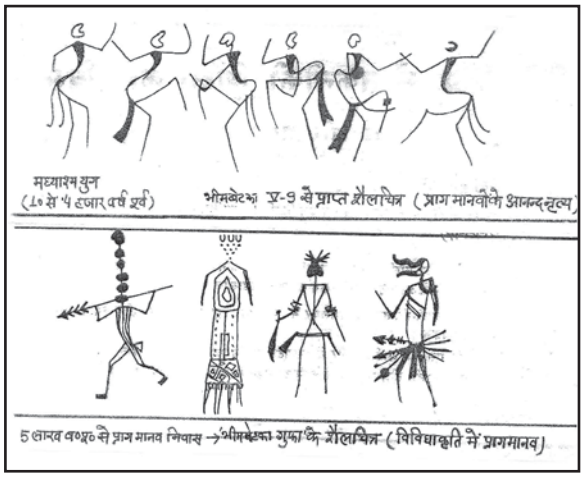

● **हाड़ौती एवं मालवा क्षेत्र के शैलाश्रयों की आकृति, काल निर्धारण तथा उपयोगिता पर आपके विचार क्या है ?**

– हाड़ौती क्षेत्र में मध्याश्मीय युग के शैलाश्रय अधिक हैं। उनकी आकृतियाँ जंगली भैंसे, हिरन, हाथी, गाय व गैंडे के रूप में काले, लाल तथा गेरूए रंग से बनी हुई हैं। 1954–55 ई. में द्वितीय सर्वेक्षण के दौरान मुझे झालावाड़ में कालीसिन्ध नदी के किनारे की पहाड़ी में 5,00,000 वर्ष पूर्व के लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए थे तथा निकटवर्ती कस्बे सुनेल के ग्राम झीकड़िया में 1,00,000 वर्ष पूर्व की षट्कोणीय तक्षणियाँ मिली थीं, जिनका उपयोग गुहा मानव भाले–तीर के अग्र भाग को नुकीला बनाने एवं हड्डियों के बाणों के अग्रभाग को नुकीला बनाने में करते थे। कोटा जिले के सुकेत कस्बे में मुझे ऐसे प्राचीन उपकरण भी मिले जो मोहनजोदड़ो से प्राप्त उपकरणों से मिलते जुलते हैं। जबकि मालवा क्षेत्र में 1953 ई. में मंदसौर, निमाड़, महेश्वर तथा 1959–60 ई. में मोड़ी इन्द्रगढ़, मनौती की खुदाई में मुझे ताम्राश्मयुगीन अवशेष मिले थे। 1960 ई. में भीम बैठका सहित मिर्जापुर एवं होशंगाबाद में मुझे महत्वपूर्ण शैलाश्रय प्राप्त हुए थे। इनके अलावा मुख्य रूप से 1962 से 82 ई. तक कायथा, इन्दौर तथा दंगवाड़ा की खुदाई में भी मुझे ताम्राश्मीययुगीन सभ्यता के उपकरण प्राप्त हुए थे।

● **शैलाश्रय आज किन परिस्थितियों में नष्ट होते जा रहे हैं, इनका मूल्यांकन समाज की निगाहों में क्यों नहीं है ?**

– अधिकांश शैलाश्रय शहरों से दूर बीहड़ों व नदी–घाटियों की पाषाणी गुफाओं में स्थित होने तथा नासमझ ग्रामीणों व आदिवासियों द्वारा उखाड़ने या कुरेदने से ये नष्ट हो रहे हैं। शैलाश्रयों की खोज मात्र पुस्तकों के बन्द पृष्ठों तक ही सीमित रह गई है जो समाज के मूल्यांकन में अवरोधक साबित हुई है। मुख्य रूप से शैलराश्रयों की प्राप्ति और उपयोगिता का अंग्रेजी में लिखा जाना भी आम लोगों व समाज के लिए दुर्भाग्य ही साबित हुआ है।

● **शैलाश्रयों की भाषा को आम लोगों तक पहुंचाने के लिए क्या किया जाना आवश्यक है ?**

– शैलाश्रयों के बारे में ग्रामीणों की सामान्यत: धारणाएँ होती हैं कि वे भूत–प्रेतों या देवताओं द्वारा बनाए गए हैं अत: शोधकर्ताओं को इसी धारणा को ध्यान में रखकर शैलाश्रयों की खोज करनी चाहिए। चित्रों को प्रामाणिकता व आंचलिक मान्यताओं के आधार पर प्रदर्शनी के माध्यम से वास्तविक वैज्ञानिक शोध के साथ आम लोगों व समाज के समक्ष प्रदर्शित करना चाहिए, जिससे उनकी कला व उपयोगिता सिद्ध हो सके।

● **शैलाश्रयों के प्रति एक इतिहासकार का कितना रुझान होता है ?**

– इस बारे में उसे शैलाश्रयों का औपचारिक ज्ञान तो होना ही चाहिए। साथ ही यह भी कि वह निर्जन स्थानों में जाने से घबराए नहीं। क्योंकि शैलाश्रय व इतिहास तो दुर्गम नदी–घाटियों में, पाषाणों तथा खण्डहरों में छिपा हुआ है। अत: एक सफल इतिहासकार को चाहिए कि वह प्राप्त जानकारी को निष्पक्ष व प्रमाणिक रूप से उजागर करे, जिससे उसका परिश्रमपूर्ण रुझान इतिहास के अन्धकारमय पृष्ठों को अनावृत करने में समर्थ हो सके।

● **इतिहास के उदीयमान लेखकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे ?**

– किसी भी इतिहास लेखक को इतिहास के किसी भी बिन्दु पर लिखने से पूर्व उस बिन्दु की गहराई तथा विश्लेषण की बुद्धि तथा विवेक से परखना चाहिए, क्योंकि इतिहास पुष्ट प्रमाणों पर ही आधारित होता है। किसी भी ऐतिहासिक स्थल की खोज दृढ़निश्चय, परिश्रम तथा विज्ञानसम्मत सत्यता के साथ ही की जानी चाहिए तथा निश्चित प्रमाण प्राप्त होने पर ही उस कार्य को समाज के सम्मुख प्रदर्शित करना चाहिए, जिससे उनका परिश्रम इतिहास का वास्तविक अंग बन सके।

● **जनमानस को पुरातत्व के सम्बन्ध में आपका कोई संदेश दीजिए।**

– जहाँ जहाँ भी प्राचीन अवशेष हो, वहाँ की ग्राम पंचायतें, स्थानीय नगर निकाय तथा स्थानीय विद्यालय को वहाँ के प्रति जनमानस में आस्था जगाना चाहिये और सुरक्षित स्थान बनाकर उन प्राचीन अवशेषों को वहाँ प्रतिष्ठित कर उनकी सुरक्षा करनी चाहिए। यूरोप की यात्रा के दौरान मैंने देखा कि वहाँ दो–चार सौ वर्ष पूर्व के अवशेषों को संवार कर पर्यटकों को आकर्षित किया जाता है। ऐसा ही हमारे देश में भी हो ताकि अर्थव्यवस्था एवं पर्यटन के साथ पुरातत्व की कला धरोहर में सुधार व समृद्धि के साथ इनकी अस्मिता बढ़ाई जा सके।

सरस्वती नदी के उद्‌गम की खोज

मध्यकालीन भारतीय इतिहस के प्रख्यात विद्वान डॉ. रघुवीर सिंह (सीतामऊ) के अनुसार– डॉ. वाकणकर की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि

यह भी रही कि उन्होंने सैकड़ों किलोमीटर की पैदल यात्राएँ कर ऋग्वेद से वर्णित पुण्य सलिला नदी सरस्वती के उद्गम स्थल से लेकर उसके सिरसा जिले में दृशब्दती (हाकड़ा) नदी में विलीन तथा अन्त:सलिल होकर अन्त:सिंधु में मिलने तक के अधिकांश मार्गों में देखकर उसे सप्रमाण मानचित्र पर अंकित किया।

डॉ. वाकणकर ने वैदिककालीन विलुप्त सरस्वती के मार्गों व उसके तटवर्ती नगरों, मन्दिरों और घाटों के अवशेष ढूँढ निकालने के लिए 1985 ई. में हिमालय की शिवालिक पर्वतमाला में स्थित आदिबदरी से पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात में कच्छ (अरब सागर) तक का 4000 किलोमीटर की पैदल यात्रा की तथा अन्त:गर्भा सरस्वती नदी की धारा की खोज करने में अद्वितीय सफलता प्राप्त की।

डॉ. वाकणकर के अनुसार सरस्वती नदी के खोज अभियान में उन्होंने सैकड़ों महत्वपूर्ण भग्नाशेषों के अलावा मुद्राओं और जीवाश्मों का संग्रह भी किया जिनसे ज्ञात होता है कि सरस्वती नदी के मुख्यत: उत्तरी क्षेत्रीय तटों पर (पंजाब, दिल्ली हरियाणा) विकसित संस्कृति पूर्व विख्यात हड़प्पा संस्कृति से भिन्न नहीं है। इस शोधयात्रा में डॉ. वाकणकर की प्रबल मान्यता थी कि प्राग मानव उत्तरादि क्षेत्र से मध्यभारत तक आया था और वह मुख्यत: सिन्धु सरस्वती के मध्य क्षेत्र का ही वासी रहा है। डॉ. वाकणकर के अनुसार- इस नदी के अवशिष्ठ अंश को 'सर' शब्द से भी प्रयुक्त किया गया, जिसका अर्थ सरोवर वाली नदी (सरस्वती) से ही है। इस नदी के तट क्षेत्र से प्राप्त अवशेषों के आधार पर उनकी मान्यता रही है कि हड़प्पीय स्थानों की संस्थिति सरस्वती के उक्त तटीय स्थानों में 900 से अधिक ऐसे स्थान मिले जो हड़प्पीय सभ्यता के समकक्ष हैं। तत्कालीन सरस्वती नदी का पाट इसके प्रवाह स्थलों में 8किमी तक चौड़ा था। इस नदी का प्राचीनतम प्रवाह आज से 25000 वर्ष पूर्व तक और इसके पूर्व 500000 वर्ष पूर्व तक (जिसमें मध्य अरावली का भाग ऊपर उठा और सरस्वती का प्रवाह उत्तर की ओर सरका) डीडवाना होते हुए लूणी नदी के रास्ते बलोल पहुँचता था और लूणी के ही मार्ग से उत्तर पूर्व कच्छ के रण में मिलकर नानूरण तथा नल सरोवर होते हुए खंभात की खाड़ी में मिलता था। यह लूणी नदी आज भी खंभात की खाड़ी में मिलती है। लेकिन यह सरस्वती के पूर्व- प्रवाह में बहती है तथा हिमालय में भी उस युग में भौगोलिक उत्थान हो रहा था। अत: बद्रीनाथ के निकट 'माणा' गांव से निकट निकलने वाला यह प्रवाहमार्ग बीच-बीच में अवरूद्ध होता गया जिससे वेदोक्त 'नदीतया' सरस्वती में जल का प्रवाह घटता गया। महाभारत पूर्व यह प्रवाह पंजाब, दिल्ली, हरियाणा क्षेत्रों की अपेक्षा बीकानेर क्षेत्र तक ज्यादा अवरुद्ध हो गया था। यहां का विशाल रेतीला संचय पूर्व प्रवाहित सरस्वती द्वारा ही लाया गया था। इसके प्रवाह को सिन्ध प्रान्त में 'नारा' रूप में माना जाता है।

महाभारत युद्ध जो कुरुक्षेत्र (हरियाणा) में हुआ था, का स्थल इसी सरस्वती नदी का विशाल क्षेत्र है, क्योंकि युद्ध के समय इस नदी का प्रवाह कालीबंगा और अनूपगढ़ तक था। इसी कारण सरस्वती के इन तटवर्ती प्रदेशों (दिल्ली-हरियाणा, पंजाब आदि के पुरातात्विक स्थलों) में महाभारत युद्ध के पूर्व तक की सघन बस्तियों व उसमें वर्णित समुन्नत नगर व्यवस्था के दर्शन होते हैं।

'अनहद'- जैकी स्टूडियो, 15 मंगलपुरा, झालावाड़ - 326001, मो. 09829896368

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर राष्ट्रीय सम्मान

म.प्र. शासन, संस्कृति विभाग द्वारा वर्ष 2005 में स्थापित

- 2005-06
  प्रथम सम्मान
  डॉ. स्वराज प्रकाश गुप्ता
  दिल्ली
- 2006-07
  द्वितीय सम्मान
  प्रो. वी.एन. मिश्र
  पुणे
- 2007-08
  तृतीय सम्मान
  प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा
  वाराणसी
- 2008-09
  चतुर्थ सम्मान
  प्रो. बी.बी. लाल
  नई दिल्ली
- 2009-10
  पंचम सम्मान
  प्रो. ए. सुन्दरा
  कर्नाटक
- 2010-11
  षष्ठम सम्मान
  श्री के.एन. दीक्षित
  नईदिल्ली
- 2011-12
  सप्तम सम्मान
  प्रो. एम.के. धवलीकर
  पुणे
- 2012-13
  अष्टम सम्मान
  डॉ. डी.पी. अग्रवाल
  अल्मोड़ा
- 2013-14
  नवम् सम्मान
  डॉ. दिलीप कुमार चक्रवर्ती
  कोलकाता

आलेख

सहृदय चित्रकार डॉ. वि. श्री वाकणकर ''पद्मश्री''

कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता एवं लब्धप्रतिष्ठित शैलचित्र संशोधक डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर मूलत: धार के निवासी थे। इनके पिता श्रीधर वाकणकर ग्वालियर राज्य में लोक निर्माण विभाग में इंजीनियर थे। यहीं से वे राष्ट्रीय आन्दोलन में स्व. सेठ नथमल चोरडिया के बाल सदस्यों में सम्मिलित हो गये थे।

कुछ वर्षों बाद आपके पिता का स्थानांतरण जिला मुख्यालय, मंदसौर में हो गया। मंदासौर में विष्णु वाकणकर ने अपने काका अनन्त बामन (अध्यापक, भूगोल) के मार्गदर्शन में पत्थरों की पहचान तथा प्रागैतिहासिक पाषाण उपकरणों की खोज का कार्य अपने अनन्य मित्र श्री कृष्णा चालिसगाँवकर के साथ प्रारंभ किया।

आगे चलकर श्री वाकणकर ने भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर एकान्त कारावास भोगी। क्रांतिकरी संगठन 'भारत दल' के सदस्य बने। मोरटक्का षड़यंत्र काण्ड के सदस्य के रूप में फरारी काटी। सन् 1961 में ''लाठी -गोली खाएंगे, फिर भी गोवा जाएंगे'' नारे के साथ भारत में पुर्तगाली साम्राज्य को चुनौती दी व पुर्तगाली सैनिकों की लाठियाँ खाई। व कुशल चित्रकार, कवि, लेखक, पुरालिपि विशेषज्ञ, मुद्राशास्त्री, अभिलेख विशेषज्ञ, मानचित्रकार, शैलचित्रविद् और इनके बाद भी बहुत कुछ थे। भारतीय अस्मिता पर गर्व और चरित्र शुद्धि उनका सबसे बड़ा सम्बल था।

तब रतलाम से चित्तौड़ तक का क्षेत्र रतलाम विभाग के अन्तर्गत आता था। मेरा आपसे सम्पर्क मंदसौर उत्खनन (1975) के दौरान हुआ। यह वह वर्ष था जब वे अपने महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र ''भीम बैठका'' की खोज के लिए ''पद्मश्री'' से सम्मानित किए जाने वाले थे। यह दशपुर (मंदसौर) का सौभाग्य ही था कि इसकी माटी में पैदा हुआ, पला-बढ़ा एक लाल अपने महत्वपूर्ण अवदान के लिए सम्मानित होने वाला था। दिनांक 27 मार्च 1975 को वे मंदसौर से रवाना हुए थे, जिन्होंने 56वर्ष की उम्र में ''पद्मश्री'' प्राप्त कर अपने पूज्य गुरुवर्य डॉ. हँसमुख लाल धीरजलाल सांखलिया ''पद्मभूषण'' का मान बढ़ाया।

मंदसौर उत्खनन में मेरी कोई हैसियत न थी। उत्खनन के दौरान मुझे डॉ. सुरेन्द्र कुमर आर्य (प्रभारी ट्रेन्च क्र.-6) की अनुशंसा पर मजदूरी 3 रु. रोज पर काम मिल गया था। इन दिनों मैं बी.ए. अन्तिम वर्ष का छात्र था। ''पद्मश्री'' प्राप्त कर लौटने के बाद हमारे महाविद्यालय में डॉ. वाकणकर का अभिनन्दन किया गया था।

डॉ. वाकणकर मूलत: चित्रकार थे। बीसवीं शताब्दी का चौथा, पाँचवा व छठा दशक चलचित्रों का स्वर्णयुग था। तब फिल्मों के पोस्टर, कटआउट सब हाथ से बनते थे। डॉ. वाकणकर ने ये सब बनाए। उन्होंने रेखाचित्रों में जो महारत हासिल कर रखी थी उसके बल पर अपनी विदेश यात्राओं के दौरान धनार्जन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की। प्रथम विदेश प्रवास हेतु चार-चार आने जोड़कर किस प्रकार सहायता की थी उसे वे आजीवन विस्मृत न कर पाए।

एक चित्रकार कुशल पुरावेत्ता हो सकता है। जो पुरावेत्ता है, पर चित्रकार नहीं है वह दूसरों की बैसाखियों पर निर्भर रहता है। यह मेरी धारणा मंदसौर उत्खनन के मजदूर के रूप में बन गई थी। डॉ. वाकणकर तो इस प्रतिमान पर शतप्रतिशत खरे उतरे थे। मंदसौर उत्खनन के दौरान उन्होंने प्राचीन ''दशपुर'' की स्थिति दर्शाने वाला एक ''लैण्डस्केप'' बनाया था। अब यह दशपुर प्राच्य शोध संस्थान की धरोहर है। मंदसौर दुर्ग के अनेक चित्र वे तत्कालीन कलेक्टर महोदय हरिशंकर पाठक को भेंट कर गये थे जो वर्षों तक कलेक्टर कार्यालय की शोभा बढ़ाते रहे। कलेक्टर नरेन्द्रपाल सिंह ने जब सभाकक्ष का जीर्णोद्धार कर नवनिर्वाचित लेमिनेटेड चित्र टंगवाए तो डॉ. वाकणकर द्वारा निर्मित दुर्लभ पेन्टिंग्स यहां-वहां धूल खाती रही पर बाबूओं ने उन्हें संग्रहालय के लिए न दिया।

मेरा सौभाग्य था कि मुझे वर्ष 1975 से 1982 तक डॉ. वाकणकर के ''निजसेवक'' के रूप में सेवा करने का अवसर मिला। इन वर्षों में गुरु-शिष्य परंपरा के अन्तर्गत जो कुछ सीखा उसका साकार रूप है मंदसौर का सम्राट यशोवर्धन संग्रहालय, जिसे मैंने व श्री गिरिजाशंकर रूनवाल ने मई-जून 1983 में मंदसौर खुला पुरातत्व संग्रहालय के रूप में स्थापित किया था। डॉ. वाकणकर के कर कमलों से ही तत्कालीन कलेक्टर पी.एस. तोमर ने इसका उद्घाटन सम्पन्न

कराया था, तब डॉ. वाकणकर ने संग्रहालय पंजी में छत्रपति शिवाजी महाराज की राजमुद्रा का आदर्श वाक्य ''प्रतिपच्चचंद्र लेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता'' लिखकर शुभेच्छा प्रदान की थी। पूज्य गुरूवर्य का यह आशीर्वाद मुझे वरदान के रूप में प्राप्त हुआ। डॉ. वाकणकर की परंपरा में मुझे वर्ष 2000 ई. में राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। इसकी अनुशंसा वर्ष 1948में तत्कालीन कलेक्टर श्री पी.एस. तोमर ने की थी।

डॉ. वाकणकर द्वारा निर्मित अनेक रेखाचित्र अब भी मेरे संग्रह में संग्रहीत है। मंदसौर के द्वितीय उत्खनन में औलिकर शासक प्रकाशधर्मा की काँच मुद्रा मिली थी। सर ने स्वयं इसका रेखांकन कर मुझे प्रदान किया था। भारतीय इतिहास के इस महत्वपूर्ण प्रमाण को मैंने डॉ. डी.सी. सरकार (कलकत्ता) तथा वि.वि. मिराशी (नागपुर) को भेजा था, परन्तु उन्होंने इसकी अवहेलना की। अब, डॉ. हाण्डा (चण्डीगढ़) इस पर शोधकार्य कर रहे हैं।

6मई 1982 को डॉ. वाकणकर मेरे विवाह कार्यक्रम में सम्मिलित होने पिपलौदा पधारे थे। पिपलौदा डोड़िया राजपूतों की रियासत थी, जहाँ अनेक प्राचीन मन्दिर, भवन, दरवाजे विद्यमान हैं। डॉ. साहब ने इनका रेखांकन किया। भाग्यवश मेरा वैवाहिक जीवन दीर्घायु न हुआ और 15 माह पश्चात् ही मेरी पत्नी श्रीमती रागिनी का स्वर्गवास हो गया। घटना को गुजरे कोई 36वर्ष गुजर गए, परन्तु डॉ. साहब ने जिस द्वार का रेखांकन किया उससे स्व. रागिनी आज भी झाँकती हुई प्रतीत होती है।

डॉ. वाकणकर की एक विशेषता यह थी जो उनके साहचर्य में रहता वह स्वयं भी चित्रकार हो जाता। कला भवन में निवास के दौरान (1978-1982) मुझ में भी यह परिवर्तन आया। इस दौरान प्रख्यात रेखांकनकार संदीप राशिनकर तथा रमेश देशमुख भी मेरे हम साथी थे। रमेश देशमुख को कब्ज की शिकायत रहती थी। अत: वे कमरे में रस्सी कूदते थे। श्री देशमुख के इस कृत्य से हमारे कमरे में मिट्टी खिरती थी। एक दिन सर ने स्वयं इस कृत्य को देख लिया। थोड़ी देर बाद उन्होंने मुझे व देशमुख को अपने कक्ष में बुलाया और अपने एक पोट्रेट की कॉपी करने को कहा। मेरा मुकाबला एक सिद्धहस्त चित्रकार से था। परीक्षा पूर्ण हुई। किसका काम अच्छा है, यह जानने की हम दोनों की इच्छा थी। शाम को सर ने मेरे अंकन को अच्छा बताया, तब देशमुख ने मेरे चित्र के घटिया होने के तर्क दिए। इस पर सर ने पूछा ''पण्डयाजी तम कई चावो।'' मैंने कहा- ''अणा देशमुखजी ने कइदो के इ रस्सी नी कूदे।'' सर कुछ बोले नहीं पर इस प्रकार हमें भूल से निजात मिल गई। मैंने व मेरे कक्ष साथी श्री चतुर्भुज पुष्पक ने चैन की सांस ली। आगे चलकर डॉ. वाकणकर ने मेरे इस चित्र में स्वयं सुधार किया। इसी चित्र को मैंने डॉ. साहब के शताब्दी समारोह पर वितरित किये जाने हेतु मेडल में ऊपर अंकित किया।

सौभाग्य से 22-24 फरवरी, 2019 को डॉ. वाकणकर के शताब्दी समारोह में आयोजित 'रासी' के कार्यक्रम में श्री देशमुखजी से घटना के 30 वर्ष बाद पुन: मुलाकात हो गयी।

डॉ. वाकणकर के हाथों बने कोई 25 हजार रेखाचित्र अब वाकणकर भारतीय सांस्कृतिक अन्वेषण न्यास की धरोहर है। पर, सर रेखाचित्रों के साथ जलरंग तथा तेलरंगों के चित्र निर्माण में उतने ही निष्णात थे। वर्ष 1982 में बनारस के चित्रकार वासुदेव स्मार्त अपनी कलाकृति 'बारहमासा' लेकर उज्जैन आये। वाकणकरजी द्वारा स्थापित भारतीय कला भवन को कलातीर्थ मानकर अधिकांश चित्रकार उनके सम्मान में उपस्थित होते थे। श्री स्मार्त ने अपनी कलाकृति की अनेक विशेषताएँ बताई। रात 09.00 बजे वे अपनी कलाकृति कलाभवन में छोड़कर चले गये।

डॉ. वाकणकर ने मुझे आदेश दिया- ''पण्डयाजी थाल लाओ''। मैं रंगों की एक बड़ी थाली उठा ले लाया। वाकणकरजी ने उसी आकार की प्लाई पर कोई चार घंटे में बारहमासे की प्रतिकृति बनाकर अपने हस्ताक्षर कर दिये। श्री स्मार्त की पेन्टिंग भीतर रख दी। दूसरे दिन प्रात: श्री स्मार्त आये व औपचारिक रामा-शामी के बाद डॉ. वाकणकर वाली पेन्टिंग लेकर चल पड़े, सीढ़ियां उतर गए। तब सर ने खड़े होकर खिड़की में से आवाज दी, स्मार्त अपनी पेन्टिंग ले जाओ।

स्मार्त सीढ़ियाँ चढ़कर वापस आये और बोले - सर, हम अपना ही चित्र लिये हैं।

सर बोले - हस्ताक्षर देखो!

स्मार्त ने देखा - आपके हस्ताक्षर!

डॉ. वाकणकर बोले- तुम्हारी मूल पेन्टिंग भीतर रखी है।

स्मार्त भीतर गए अपनी पेन्टिंग लाए व हूबहू नकल देखकर शर्म से बोले- सर, कल हम अपनी पेन्टिंग की कुछ अधिक ही प्रशंसा कर दिये थे।

डॉ. साहब सरल व सहज चित्रकार थे कि कोई आग्रह क्या कर दे, तत्काल रेखाचित्र हाजिर कर देते थे। 1982 में जब वे कदवासा हायर सेकंडरी स्कूल में अपना व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किये गये तो उन्होंने ''बोराजी की बावड़ी'' सूर्य प्रतिमा का चित्र मात्र 3 मिनट में बनाकर छात्रों को विस्मित कर दिया। संस्था ने मेरे द्वारा संपादित ''हिलौर'' नामक हस्तलिखित पत्रिका के मुखपृष्ठ पर इस चित्र को लगाया। इस पत्रिका ने संभाग स्तरीय हस्तलिखित पत्रिका प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। मुझे गर्व है कि मैं ऐसे महान् चित्रकार का शिष्य रहा। मुझे दु:ख है तो इस बात का कि मेरा एक शिष्य कुशल चित्रकार बना। स्वर्णपदक प्राप्त किया और फ्रांस की यात्रा की। एक बार मैंने उससे माँ सरस्वती के चित्र निर्माण की जिद की। वह बोला- सर, मैं मॉर्डन आर्टिस्ट हूँ। देवी-देवताओं के चित्र नहीं बनाता हूँ। काश, ऐसे चित्रकार डॉ. वाकणकर की रचनाधर्मिता से कुछ प्रेरणा ले जाते। मॉर्डन आर्ट तो सारी दुनिया बनाती है, पर सरस्वती की तस्वीर तो भारत में ही बनती है।

निदेशक : श्री दशपुर प्राच्य विधा प्रतिष्ठान, मंदसौर (म.प्र.)
मो.: 7422406936

आलेख

पुरातत्व के महाप्राण डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

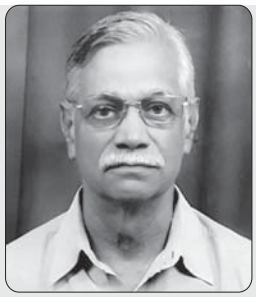

डॉ. नारायण व्यास

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, पद्मश्री से अलंकृत स्व. डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर का नाम कौन नहीं जानता! पुरातत्व के कार्यक्षेत्र के अतिरिक्त कला, मूर्तिकला, इतिहास, पुराभिलेख, संस्कृत साहित्य, काव्य के क्षेत्रों में उनका गहन अध्ययन था। उन्होंने अपने जीवनकाल में सबसे महत्वपूर्ण लगभग चार हजार से भी अधिक प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रयों की खोज भारत, अमेरिका तथा यूरोप में की। वहाँ पर ही उन्होंने व्याख्यान तथा शैल चित्रकला की प्रदर्शनियों का आयोजन किया। 1976में अमेरिकन विद्वान आर.आर. ब्रुक्स के साथ शैलचित्रों पर ''स्टोन एण्ड पेंटिंग्स ऑफ इण्डिया'' पुस्तक प्रकाशित की गयी। उन्होंने चित्रित शैलाश्रयों का विस्तृत अध्ययन किया, साथ ही उनका कालक्रम देकर भारतीय पुरातत्व में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ. वाकणकर ने विभिन्न संस्थाओं को जन्म दिया जो आज भारती कला भवन, चित्रित शैलाश्रय शोध संस्थान, विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन का पुरातत्व विभाग प्रमुख है। डॉ. वाकणकर मानवता के पुजारी थे, जिन्होंने समय-समय पर दु:खी तथा असहाय व्यक्तियों तथा छात्रों की सहायता कर उन्हें आगे बढ़ाया। उन्होंने अपने जीवनकाल में कई कर्मठ तथा विद्वान शिष्य बनाये जो आज देश-विदेश में उनका नाम चमका रहे हैं, जिनमें नागदेव, रहीम गुट्टीवाला, कुरेशी प्रमुख थे। उन्होंने अपने शिष्यों में समान भाव रखकर पुत्रत्व प्रदान किया।

डॉ. वाकणकर द्वारा किये गये महत्वपूर्ण अनुसंधानों एवं पुरातत्वीय खोजों में कायथा, दंगवाड़ा, रूनीजा, भीमबैठका, भानपुरा इत्यादि प्रमुख थे। पता नहीं और कितनी असंख्य, अनगिनत खोजें की होंगी। उनकी सबसे महत्वपूर्ण खोज कायथा एवं भीम बैठका थी। कायथा की ताम्राश्मयुगीन संस्कृति को उन्होंने सिंधु संस्कृति के पूर्व होने के प्रमाण बताये जो उचित भी हैं। प्रमाणों से कायथा ने देश-विदेश के विद्वानों में हलचल पैदा कर दी। विदिशा के निकट बेतवा तट पर रंगई में ताम्राश्म-नवाश्म युगीन संस्कृति के अवशेषों को खोजकर दो संस्कृतियों के मिलन स्थल को सिद्ध किया। कालान्तर में उक्त स्थल के महत्व को दृष्टिगत कर वर्ष 1976-77 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, भोपाल द्वारा वहाँ उत्खनन किया जाकर डॉ. वाकणकर की खोज को सफलतम् खोज सिद्ध किया। भारतवर्ष में बत्तीस सरस्वती नदियाँ पायी जाती हैं, जिनमें छ: का डॉ. वाकणकर द्वारा सर्वेक्षण किया गया है। इन्होंने विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों को लेकर 1986में आदिबदरी से सोमनाथ तक एक माह में लगभग चार हजार मील यात्रा की तथा महत्वपूर्ण प्रमाण प्राप्त किये। वर्ष 1957-58में उनके द्वारा भीमबैठका की खोज कर प्रागैतिहासिक शैलचित्रकला के क्षेत्र में उसे विश्व का महानतम् आद्यमानव का पुरास्थल घोषित किया। सन् 1972 में उत्खनन के पूर्व भीमबैठका में मुझे बताया कि वे एक बार किसी आवश्यक कार्य से पेसेंजर ट्रेन से नागपुर जा रहे थे। जब वे औबेदुल्लागंज से आगे निकले तो उन्होंने सामने पहाड़ पर किले नुमा विशाल तथा ऊँची चट्टानों को देखा, तब उनके मन में कौतुहल उत्पन्न हुआ कि ये विचित्र प्रकार की विशाल चट्टानें क्या हैं? निश्चय ही आद्यमानव से सम्बन्धित स्थल होना चाहिये। यह सोचते-विचारते वे बरखेड़ा आ गये और वहीं उतर गये। बरखेड़ा में शाम हो गई थी। अत: रात्रि वहाँ विश्राम कर अगले दिन प्रात: विशाल चट्टानों की दिशा में वे पैदल पहाड़ों को पार करते चलते रहे। उस समय उन्हें भूख सता रही थी, परन्तु मन में प्राचीन अवशेषों को देखने की ज्यादा भूख थी। भीमबैठका की पहाड़ी की तलहटी में छोटी जामन झीरी पहाड़ी नाला है, वहीं किनारे पर उन्होंने भीमबैठका पहुँचने के पहले कुछ देर विश्राम किया। उनके पास कुछ आलू थे, उन्होंने आलू को रेत के नीचे दबाकर ऊपर लकड़ियाँ जलाकर रख दीं ताकि रेत की गर्मी से आलू भुन जावें। आलू रेत में रखने के पश्चात् भीमबैठका वाले पहाड़ पर चढ़े। वहाँ एक दुर्गा मन्दिर था, जहाँ स्वामी शालिगराम दास नामक सन्त रहा करते थे, उनसे वहाँ भेंट की। कुशल-खेम पूछने के पश्चात् डॉ. वाकणकर ने अपना प्रयोजन बताया। स्वामीजी ने प्रसन्नता से कई चित्रित शैलाश्रय डॉ. वाकणकर को बताये। सभी स्थानों पर घूमने के पश्चात स्वामी जी ने उनसे भोजन का आग्रह किया, तब डॉ. वाकणकर ने रेत में दबे आलू के विषय में बताया। यह जानकर स्वामी शालिगराम जी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उनकी कर्मठता व प्रेरणा शक्ति देखकर उन्हें सफल होने का

आशीर्वाद दिया। आलूरूपी भोजन को देख स्वामी जी ने डॉ. वाकणकर को आलू महाराजा की उपाधि दी तथा अन्त तक वे उन्हें हास्य से आलू महाराज ही कहा करते थे।

सन् 1972 में डॉ. वाकणकर ने जनवरी के प्रथम सप्ताह में भीमबैठका में पुरातत्वीय उत्खनन की योजना बनाई तथा सभागृह नामक शैलाश्रय (III एफ/24) में कार्य प्रारंभ किया। उनके साथ मेरे अतिरिक्त डॉ. सुरेन्द्र कुमार आर्य एवं नारायण भाटीजी भी थे। कार्य प्रारंभ करने से पूर्व जंगलों, पहाड़ों को पार करते हुए उत्खनन का सामान हमने वहाँ पहुँचाया। डॉ. वाकणकर हम लोगों से पहले पहुँच गये थे, परन्तु हम लोग दोपहर होते-होते घने जंगल में भटक गये। कहीं दूर से डॉ. वाकणकर ने हमें देखा तथा काँच से सूर्य की रोशनी हम लोगों की तरफ फेंकी, और हमें ढूँढ निकाला। डॉ. वाकणकर हमेशा जंगलों में घूमते समय एक काँच (आईना) अवश्य रखा करते थे।

भीमबैठका के शैलाश्रयों का मैंने तथा सर (डॉ. वाकणकर) ने डॉक्यूमेंटेशन कर उनमें नम्बर डाले। यहाँ सर्वेक्षण के अन्तर्गत लगभग 700 शैलाश्रय देखे गये जिनमें लगभग 500 चित्रित शैलाश्रय थे। ये चित्र हरे, लाल तथा सफेद रंगों में बनाये गये थे। हरे रंग के चित्र बहुत ही कम प्राप्त हुए थे। डॉ. वाकणकर ने भीमबैठका क्षेत्र की पहाड़ियों को सात समूहों में विभक्त किया जिनमें पाँच महत्वपूर्ण समूह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा राष्ट्रीय महत्व को घोषित कर अभिरक्षित किये हैं।

चित्रित शैलाश्रयों के अतिरिक्त शैलाश्रयों में निर्मित विशाल पत्थरों के मकान, दो पहाड़ों को जोड़कर बनाये गये पत्थर व मिट्टी के बाँध, परमारकालीन मन्दिरों के पुरावशेष, पहाड़ी ढलान पर बनी पाषाण दीवारें एवं मकान, छोटे स्तूप एवं चबूतरे भी सर्वेक्षण के अन्तर्गत प्रकाश में लाये गये। जनवरी से मार्च, 1972 के मध्य शैलचित्रों के सर्वेक्षण का कार्य भीमबैठका में डॉ. वाकणकर तथा मैंने कई दिनों तक किया। हम लोग सूर्योदय से सूर्यास्त तक सर्वेक्षण कार्य किया करते थे। डॉ. वाकणकर को सर्वेक्षण के अन्तर्गत लकड़बग्घा, जंगली सुअर, नील गाय इत्यादि जानवरों से कई बार मुकाबला हुआ तथा उन्हें सूझ-बूझ से भगाया।

सम्पूर्ण भारत में अब तक हुए प्रागैतिहासिक उत्खननों में भीमबैठका ही एक ऐसा स्थान है जहाँ से विभिन्न युगों से सम्बन्धित मिट्टी की परतें प्राप्त हुई हैं। जनवरी 1972 में स्व. एच.डी. संकालिया उत्खनन कार्य के समय भीमबैठका आये थे तथा उन्होंने बताया था कि भीमबैठका ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पर पूर्व पाषाण काल से चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी तक के पुरावशेष क्रमिक रूप से उत्खनन में प्राप्त होते हैं।

डॉ. वाकणकर द्वारा किये गये भीमबैठका के विभिन्न समूहों में समूह क्रमांक दो एवं तीन प्रमुख हैं, जहाँ डॉ. वाकणकर द्वारा उत्खनन करवाया गया था। कार्य करने का मुख्य उद्देश्य यह था कि जिस क्षेत्र में सैकड़ों चित्रित शैलाश्रय मिलते हैं, वहाँ निश्चित ही आदि मानव का पाषाण युग में निवास होना चाहिये। सर्वेक्षण के अन्तर्गत अश्मोपकरण व अन्य अवशेष ऊपरी सतह पर तो मिलते हैं, परन्तु उत्खनन में पुरावशेष मिलना ही महत्वपूर्ण माना जाता है। डॉ. वाकणकर द्वारा किये गये उत्खनन को देखने विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन के तत्कालीन उप कुलपति डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' तथा साथ में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय भी आये थे।

भीमबैठका के शैलचित्रों को डॉ. वाकणकर द्वारा आखेट दृश्य, युद्ध के दृश्य, पशुपालन, पशु-पक्षी तथा जलचर, व्यक्ति चित्र, आलेखन, नृत्य के दृश्य, धार्मिक चित्रण, उत्कीर्ण तथा अभिलेख के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया। डॉ. वाकणकर जी, 'जागो मोहन प्यारे जागो' की धुन से भीमबैठका उत्खनन कैम्प (जो सन् 1972 से 1977 तक चला) में सभी को सुबह-सुबह जगाने वाले मनीषी दादा के रूप में प्रसिद्ध थे। उनका गहरा सम्बन्ध केन्द्रीय तथा राज्य के पुरातत्व विभाग से था। वे सदैव ऊर्जा से भरे रहते और सर्वेक्षण में सभी को सीख देते थे। डॉ. वाकणकर का एक कहानी संग्रह और आर्य समस्या पर हिन्दी व अंग्रेजी में पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। इनके द्वारा रचित दो कविताएं ''इतिहास के पटल से'' तथा ''शबरी के राम'' एवं उनकी कहानियों में और ''मैं भी नहीं डरता मौत से'' अधिक प्रसिद्ध हुई। उनके पास अनेक ताम्रपत्रों, शिलालेखों, प्रतिमाओं, चित्रों आदि का विशाल संग्रह था।

प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान तथा विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन के तत्कालीन उप कुलपति डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने मालव-प्रहरी के ''वाकणकर विशेषांक'' में वर्ष 1986में लिखा था, ''ऐसा मालूम पड़ता है कि वाकणकर जैसी प्रतिभा का व्यक्ति हम सोचते थे कि हमने इनको यहाँ पर उत्खनन का इंचार्ज नियुक्त किया है, लेकिन हमको तो मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय ऐसे बड़े विद्वान, ऐसी चतुर्मुखी प्रतिभा, ऐसे इतिहास व दर्शन के दहकते हुए तपस्वी पुरुष को पाकर धन्य हो गया है।'' डॉ. सुमन आगे लिखते हैं कि ''कला में कला की साधना सत्य है। सत्य को प्राप्त करने के लिये कला होनी चाहिये और साधना सौन्दर्य। सौन्दर्य के द्वारा कला के सत्य को उद्घाटित करना चाहिये। सत्य को प्राप्त करने के लिये योगी तपस्या करता है, प्राणायाम करता है, और कलाकार जो है, वह सौन्दर्य के द्वारा चित्र बनाकर, मूर्ति बनाकर उसके द्वारा सत्य को प्राप्त करता है, ये सब सत्य को प्राप्त करने के प्रयोग हैं। इसमें सबसे बड़ा प्रयोगकर्ता हमारा डॉ. विष्णुश्रीधर वाकणकर है।'' डॉ. वाकणकर पुरातात्विक कार्य के लिये सिंगापुर गये थे। वहाँ अप्रैल 1988में उनका निधन हो गया। आज वे हमारे मध्य नहीं हैं फिर भी उनका नाम साहित्य, कला, संस्कृति तथा उत्खनन के क्षेत्र में अक्षुण्ण रहेगा।

अधीक्षण पुरातत्वविद, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,
मन्दिर सर्वेक्षण परियोजना (उ.क्षे.)

■

जीवन परिचय

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर (हरि भाऊ)

(4 मई-1919-3, अप्रैल 1988)

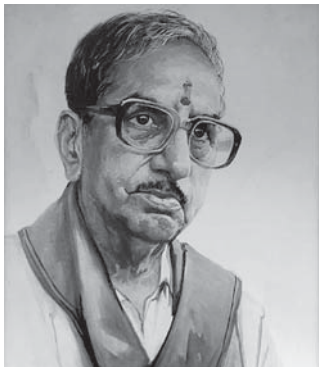

डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर का जन्म 4 मई, 1919 को मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र के नीमच शहर में हुआ था। उनके विशिष्ट शैक्षणिक वृत्ति ने उन्हें भारत में शैल कला अध्ययन के 'पितामह' की उपाधि दी। 1954 के बाद से, उन्होंने भारत और विदेशों में यथा यूरोप, उत्तरी अमेरिका और मध्य पूर्व में शैल कला पर व्यापक सर्वेक्षण कार्य किया। अनुमानत: यह माना जाता है कि उन्होंने अकेले भारत में लगभग 4,000 अलंकृत शैलाश्रयों की खोज की और उनका आलेखन किया। 1957 में उन्होंने भीमबैठका के चित्रित शैलाश्रयों की खोज की, जिसे 2003 में यूनेस्को द्वारा विश्वदाय स्थल के रूप में अंकित किया गया था।

सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी डॉ. वाकणकर को 1975 में भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मानों में से एक, पद्मश्री सहित कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। वह विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में महत्वपूर्ण पदों पर रहे और कई पुरातात्विक सर्वेक्षणों में शामिल हुए, उन्होंने चंबल और नर्मदा नदी घाटी का सर्वेक्षण किया, इसके अतिरिक्त सूखी सरस्वती नदी की घाटी की भी खोज की। उन्होंने भारत और विदेशों में विभिन्न पुरास्थलों पर पुरातात्विक उत्खनन कार्य भी किया। डॉ. वाकणकर सिक्कों एवं अभिलेखों के भी विशेषज्ञ थे, उनके पास सिक्कों एवं अभिलेखों का संग्रह था, जो अब वाकणकर शोध संस्थान में रखे हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत, प्राकृत और ब्राह्मी में दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के कई शिलालेखों का अध्ययन किया। डॉ. वाकणकर ने 6पुस्तकें और 400 से अधिक शोध-पत्र प्रकाशित किए। उन्होंने उज्जैन में वाकणकर इंडोलॉजिकल कल्चरल रिसर्च ट्रस्ट की स्थापना की। आज शोध वाकणकर संस्थान में 7500 से अधिक शैलचित्र कला के आलेखों का संग्रह है जो स्वयं डॉ. वाकणकर द्वारा बनाई गई थी।

मुख्य योगदान

अनुसंधान : उन्होंने भारत में 4000 से अधिक शैलाश्रयों की खोज की और उनका अध्ययन किया, साथ ही यूरोप और अमेरिका में भी शैलाश्रयों और शैलचित्रों की भी खोज की।

पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं उत्खनन :- उन्होंने चंबल और नर्मदा नदी घाटियों का सर्वेक्षण किया एवं महेश्वर (1954), नावदाटोली (1955), मनोटी (1960), आवारा (1960), इंद्रगढ़ (1959), कायथा (1966), मंदसौर (1974 और 1976), आजादनगर (1974), दंगवाड़ा (1974 एवं 1982), रुनिजा (1980), इंग्लैण्ड में वर्कोनियम रोमन स्थल (1961) और फ्रांस में इनकॉलिव (1962) पुरास्थलों का उत्खनन करवाया।

सहकार्य : एच.डी. संकलिया, मॉर्टिमर व्हीलर, काशीनाथ कृष्ण लेले, अनंत वामन वाकणकर, एस. दीक्षित, रॉबर्ट ब्रूक्स, जेरी जैकबसन, एन.आर. बनर्जी, एस.बी. डीईओ, एम.के. धवलिकर, तिलनेर।

खोज एवं उद्ववाचन : गुप्त, मौखरी, औलीकर, परमार और भुलुंडकालीन संबंधित शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों, अमेरिका में प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज की।

प्रदर्शनियाँ : जयपुर, उज्जैन, इंदौर, खैरागढ़, ऑस्ट्रिया, रोम, पेरिस, फ्रैंकफर्ट और अमेरिका में उनके द्वारा आयोजित कई प्रदर्शनियाँ उनका एकात्मक प्रयास स्वरूप था, अखिल भारतीय कालिदास पेंटिंग और मूर्तिकल प्रदर्शनियों के संस्थापक और निदेशक।

ग्रहित पद : भारत कला भवन, ललित कला संस्थान, रॉक आर्ट इंस्टीट्यूट, उज्जैनय निदेशक, उत्खनन विभाग, पुरातत्व संग्रहालय, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन प्रांतीय बौद्धिक प्रधान, आर.एस.एस. मध्य भारत फाउण्डर और अध्यक्ष सरस्वती शिशु मंदिर, उज्जैनय महासचिव, संस्कार भारती, भारतय अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसायटी, उज्जैन, संरक्षक, कला पत्रिका आकार, उज्जैनय प्रमुख, बाबासाहेब आप्टे इतिहास संकलन समिति (मध्य प्रदेश और गुजरात), अध्यक्ष विद्यार्थी परिषद, मध्यप्रदेश, अखिल भारतीय कालिदास समारोह समिति के सदस्य।

विदेश यात्रा एवं अधिछात्रवृत्ति : 1963 में उन्होंने डोरबाजी टाटा ट्रस्ट यात्रा अनुदान पर यूरोप की यात्रा की, 1961 से 1963 तक उन्होंने फ्रांस सरकार की छात्रवृत्ति पर शोध कार्य किया; 1966में उन्हें अमेरिकन शैलाश्रयों पर कार्य के लिए अमेरिकी विदेश विभाग द्वारा निमंत्रण दिया गया, 1981 में उन्होंने कापो दी पोंटे, इटली में शैलाश्रय पर आयोजित संगोष्ठी में भाग लिया।

सौजन्य : डॉ. नारायण व्यास, भोपाल

■

संस्मरण

वाकणकर के मानस पुत्र एवं कला शिष्य: सचिदा नागदेव

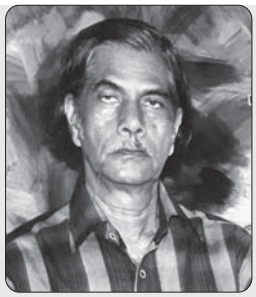

सचिदा नागदेव

परिचय लेखक:- *सचिदा नागदेव*

1953 से भारती कला भवन उज्जैन में डॉ. वाकणकर के कला शिष्य। उनके प्रथम विद्यार्थी होने का गौरव प्राप्त। अन्तर्राष्ट्रीय कलाकार के रूप में ख्याति प्राप्त। गत 25 वर्षों से भोपाल में अध्यापन तथा चित्रकारी में संलग्न। देश-विदेशों में अनेकों कला प्रदर्शनियाँ आयोजित।

मेरे पास एक केमल गोंद की नीले रंग की बड़ी शीशी रखी है जिसके मुँह पर एक डोरी बंधी है। ये शीशी विश्वविख्यात पुरातत्ववेत्ता वाकणकरजी की वॉटर बॉटल थी जिसे वो कई यात्राओं में पानी पीने के लिये उपयोग में लाते रहे। कितने सीधे-साधे थे। उनको कभी भी अपनी दैनिक आवश्यकता के लिये बहुत अच्छी वस्तुओं की जरूरत नहीं पड़ी, जो कुछ मिलता उसी से काम चला लेते। 1987 में, मैं उनके साथ जब बैंगलोर और हैदराबाद जा रहा था तो एक नई वाटर बाटल खरीदी और ये 'गोंद की शीशी' मैंने अपने पास रख ली।

बैंगलोर में ही उन्होंने अमेरिका के वाटूमल फाउण्डेशन को एक पत्र लिखा कि उनको चालीस विशिष्ट भारतीय के रूप में जो सम्मान दिया जा रहा है वो उन्हें मंजूर है किन्तु सम्मानधन राशि (एक लाख रुपये) जो भारत सरकार को वन विकास के लिये देना तय किया है उसके बदले यदि उन्हें ही ये धनराशि दी जाय तो उनके शोध कार्य में उसका उपयोग हो सकेगा।

मुझे उनका प्रथम विद्यार्थी बनने तथा मानस पुत्र कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आजीवन वो मेरे गुरू रहे। इन पैंतीस वर्षों में इनके सान्निध्य में रहने की अनेकों स्मृतियाँ है। कला भवन के विद्यार्थी एक परिवार के रूप में रहते थे। मुझे याद है कि उनके रसोईघर में रहीम, कुरेशी, शिवकुमारी, आरेकर, भावसार तथा मैं, हम सभी पुराने विद्यार्थी सर के साथ भोजन करते। उन्होंने बताया कि कभी घमण्ड मत करो, वो स्वयं भी ऊँचे से ऊँचे सम्मन मिलने के बाद भी बहुत ही सीधे रहे, कभी घमण्ड नहीं किया। अपनी पिछली अमेरिका यात्रा में वो कला भवन के विद्यार्थी मुजफ्फर कुरेशी के घर डलास (टेक्सास) नामक नगर में गये। कुरेशी जो अत्यन्त गरीब तथा मेधावी था। आज अमेरिका में जाकर धनी जौहरी हो गया। वाकणकरजी ने लिखा कि कुरेशी के घर में जहाँ मैं बैठा हूँ, आसपास सोने और हीरे के टुकड़े बिखरे पड़े हैं पर समृद्धि के बाद भी वो वैसा ही है जैसा उज्जैन में था। ये सब वाकणकरजी ने अपने विद्यार्थियों को दिये संस्कारों के कारण हुआ।

कला भवन के विद्यार्थियों को वो प्रतिवर्ष यात्रा पर ले जाते। धार, माण्डू, अजन्ता-एलोरा, चित्तौड़गढ़ तथा अन्य स्थानों पर वहाँ वो हमें प्राचीन कला के बारे में समझाते, प्रत्यक्ष, दृश्य चित्र और स्केचेस बनाते। जंगलों में सभी विद्यार्थियों के आगे चलकर जोर से 'जय जय भारत देश' गाते। उनकी ये आदत हमेशा रही। बहुत वर्षों बाद अमेरिका यात्रा में वाशिंगटन के एक उद्यान में जब वो जय जय भारत देश गाते जा रहे थे तो उनके धार नगरी के एक बाल सखा ने उनकी आवाज सुन उन्हें पहचाना। कितना अद्‌भुत होगा दो बचपन के साथियों का अमेरिका में मिलन।

उज्जैन में कला भवन में वो अक्सर विद्वानों को बुलाते और उनका सम्मान करते। कला भवन धीरे-धीरे एक बड़ा संग्रहालय बन गया। जहाँ उन्होंने सैकड़ों सुन्दर प्राचीन मूर्तियाँ, लघु चित्र, असंख्य मुद्रायें तथा पाण्डुलिपियों का संग्रह स्वयं के परिश्रम से किया। चित्रकार के रूप में उनके रेखाचित्र बहुत ही सशक्त होते। वो जहाँ भी रहते उनका हाथ सदैव कागज पर चलता रहता। बहुत कठिन परिस्थितियों में उन्होंने बम्बई से पेंटिंग में डिप्लोमा किया था। तैलरंग नहीं होने पर अपने बड़े भाई के प्रिंटिंग प्रेस की छापने की स्याही से उन्होंने परीक्षा में कार्य किया। भारत, यूरोप

और अमेरिका में सैकड़ों रेखाचित्र उन्होंने बनाये।

उज्जैन में प्रारंभिक दिनों में वो कोई भी छोटा-मोटा पेंटिंग का काम अपने हाथ में लेते फिर सब विद्यार्थियों की मदद से उसे पूरा करते। उज्जैन के कार्तिक मेले में प्रतिवर्ष कला भवन की प्रदर्शिनी लगाते और साधारण गाँव वालों को पेटिंग के बारे में समझाते। वहीं दिसम्बर की ठण्ड में पण्डाल में सोते थे हम लोगों के साथ। प्रागैतिहासिक गुफाचित्रों की खोज का प्रथम अभियान तो बहुत ही रोचक था। 1955 में उज्जैन के ग्राण्ड होटल में उन्होंने कुछ भित्तिचित्र बनाने का काम लिया। उसमें करीब तीन सौ रुपये मिले। उनसे वो हम विद्यार्थियों (रहीम, कुरैशी तथा मुझे) को लेकर भानपुर (चंबल घाटी) के जंगलों में गये। वहाँ हम लोगों ने दस दिन घने जंगलों में रहकर प्राचीन शैलचित्रों की अनुकृतियाँ की। ये सभी चित्र चंबल बाँध के पानी में डूबने वाले थे। एक गुफा में उन्होंने आदिमानव का रूप धारण किया, सिर से पैर पर पत्तों से अपने को ढका और एक मिट्टी का

कटोरा लेकर गुफा में चित्र बनाने लगे। हम सभी ने वैसी ही वेशभूषा की और नाचते हुए चित्र उतारे। इन्हीं शैलचित्रों की अनुकृतियों को लेकर वो 1961 में यूरोप गये। वहाँ लंदन, पेरिस और रोम में उनको प्रदर्शित किया और विश्वभर में भारत की प्रागैतिहासिक कला का झण्डा गाढ़ा। उस यूरोप यात्रा के लिये भी उन्हें भारी कष्ट उठाने पड़े। टाटा ट्रस्ट की छोटी सी मदद से पानी के जहाज का टिकिट लिया। भाग-दौड़ इतनी रही कि वो पहले बम्बई पहुँचे, पीछे से मैं उनकी सामग्री और बिस्तर लेकर उसी दिन सुबह बम्बई पहुँचा जब उनका जहाज जाने वाला था।

एक अमेरिका विद्वान रॉबर्ट ब्रुक्स के साथ अध्ययन करके भीम बैठका की पहली सचित्र पुस्तक अमेरिका की मेल युविर्सिटी से प्रकाशित हुई। इसके बाद में से पुराविदों का लगातार आना रहा इस स्थान पर और वाकणकरजी के मार्गदर्शन में अनेक तरह का अध्ययन उन लोगों ने किया। यूरोप का एक दल तो साल दो साल में नियमित यहाँ आता, अपनी एक बड़ी मोटर में और सभी लोग मेरे रविशंकर नगर निवास में इकट्ठा होते, वाकणकरजी भी उज्जैन से आते और सब भीम बैठका तथा अन्य स्थानों पर जाकर अध्ययन करते। सारे विश्व के पुरातत्ववेत्ता उनके कार्य को मानने लगे थे। ऐसे ही एक अभियान में जब सब लोग अपनी उम्र को 'ओल्ड' कहकर संबोधन कर रहे थे, तब वाकणकरजी ने 'आय एम सिक्स्टी फाईव ईयर यंग' (मैं 65 वर्ष का जवान हूँ कहकर बात की। वास्तव में उन पर उम्र का कोई असर नहीं था, इतनी चुस्ती-फुर्ती उनमें थी। वो अपने नाम वाकणकर को 'वाक एण्ड कर' (चलो और करो) कहते थे। मीलों पैदल चलते थे पीठ पर झोला बांधे। रात में वापस आकर लिखते रहते और बच्चों को कहानी सुनाते सो जाते, फिर कुछ समय बाद उठकर लिखने लगते। बच्चों को वो अक्सर जीना माता द्वारा गाई लोरी सुनाते।

उनका कार्यक्षेत्र इतना व्यापक था कि उसको लिख पाना भी कठिन कार्य है। वो चित्रकार, लेखक, कवि, पुरातत्ववेत्ता, समाज सुधारक सभी कुछ थे। विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग को तो उन्होंने एक जीवंत संग्रहालय बना डाला था। वहाँ से जब रिटायर हुये तो हम लोगों की इच्छा थी कि विश्वविद्यालय में एक भोजपीठ स्थापित कर वाकणकरजी को और कार्य करने का अवसर मिले तो अच्छा होता, पर वैसा हुआ नहीं। भारतीय कला और संस्कृति को विश्वभर में प्रचारित करना ये उनकी महती आकांक्षा थी। मेक्सिको में जाकर एक प्राचीन भारतीय अभिलेख की खोज की तथा अमेरिका में विश्व हिन्दू परिषद् के सम्मेलन में उन्होंने एक विशाल प्रदर्शनी आयोजित की जिसमें प्राचीन भारत का गौरव दिखाया गया था। उन्होंने 1961 में पेरिस में अपने विद्यार्थियों के चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी लगाई थी जिसमें कालिदास के काव्य का चित्रण किया गया था।

सिंगापुर जाने के कुछ दिन पूर्व उज्जैन में उन्होंने मुझे कहा था कि मैं भी उनके साथ सिंगापुर जाऊँ। लेकिन मैं उनके साथ नहीं जा सका। ये यात्रा उनकी अंतिम यात्रा थी। सिंगापुर की होटल के 25 वें मंजिल से दूर दिखने वाले दृश्य का रेखाचित्र बना रहे थे कि हृदयाघात से उनका निधन हुआ। उस समय उनके हाथ में स्केचपेन तथा सामने अधूरा रेखाचित्र था और वो नितांत अकेले थे। अपनी प्रियनगरी उज्जैन से बहुत दूर।

-ए-8, कस्तूरबा नगर, भोपाल, म.प्र.

■

आलेख

अलौकिक शोध-दृष्टि का तपस्वी कला साधक : वि. श्री वाकणकर

संदीप राशिनकर

जैसे अचानक ही कह दिया जाये कि 'आकाश' पर आलेख लिखो तो जो एक असमंजस की स्थिति का उद्‌भव होता है, वैसा ही कुछ डॉ. वि.श्री उपाख्य हरिभाऊ वाकणकर जी पर आलेख लिखते समय महसूस हो रहा है, बावजूद इसके कि कुछ दिन नहीं वरन् इंजीनियरिंग करने के दौरान पूरे एक वर्ष मुझे उनके घर, उनके सान्निध्य में रहने का सुअवसर मिला हो।

आकाश का विस्तार, उसकी विविधता, उसमें निहित ज्ञात-अज्ञात असंख्य पहलू, उसकी असीमितता, उसकी अबूझता, उसकी विशालता जैसे उसे शब्दों में बाँधने में अक्षम है वैसे ही वाकणकरजी की शोध-दृष्टि, कला-साधना, समर्पण व ध्येयनिष्ठ तपस्या ने वह वृहद् मकाम हासिल किया है जिसे एक आलेख में समेटना असंभव ही नहीं वरन् नामुमकिन है।

इस लौकिकजगत में कुछ बिरले ही ऐसे अलौकिक व्यक्ति होते हैं जो अपने कर्तत्व व व्यक्तित्व से एक मिसाल बन जाते हैं। नहीं तो क्या यह संभव है कि मात्र सात दशक की अपनी जीवनयात्रा में कोई परमारकालीन 35 शिलालेखों 600 चित्रित शैलाश्रयों, 62 ताम्राश्युगीन सभ्यता क्षेत्र एवं 10 हजार उज्जयिनी मुद्राओं पर महत्वपूर्ण खोज व संशोधन संपादित कर सके।

भीमबैठका वाकणकर

डेक्कन कॉलेज के सहपाठी एवं डॉ. साकलिया के विद्यार्थी रहे डॉ. शर्मा के सामने हरिभाऊ वाकणकर का नाम लेते हुए प्रसन्न होकर उनका कहना 'वो भीमबैठका वाकणकर।' निश्चित ही वाकणकरजी द्वारा किए गए भीमबेटका के अद्वितीय कार्य की उच्चता का अनुमोदन है। भारतीय पुरातत्व शोध क्षेत्र में वाकणकरजी द्वारा भीमबैठका का कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि भीमबैठका और वाकणकरजी का नाम एक-दूसरे का पर्यायवाची शब्द बन गया है तभी तो उनके सहपाठी द्वारा उनका जिक्र आते ही उन्हें भीमबेटका वाकणकर नाम से संबोधित किया गया। यह कार्य कितना श्रमसाध्य व महत्वपूर्ण था कि अनेकों की उपेक्षा, उपहास की चिंता न कर वाकणकर जी ने पंद्रह वर्ष तक हर शनिवार-रविवार एवं अन्य अवकाश के दिनों में भीमबैठका जाकर अपना खोज कार्य जारी रखा।

ये भीमबैठका क्या है ?

भीमबैठका के पुरातात्विक महत्व के अन्वेषण व उल्लेखन के बाद उसकी महत्ता को अपेक्षित मान्यता दिलाने के वाकणकरजी के राष्ट्रीय प्रयत्न जब दुलर्क्षित किए गए तो उन्होंने भीमबैठका की पुरातत्वीय महत्ता को स्थापित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय पुरातत्वीय संस्थानों से संपर्क किया। तब हालात ये हुए कि हर पंद्रह-बीस दिनों में विदेशी पुरातत्ववेत्ताओं के दलों का भोपाल आना-जाना शुरू हुआ। इस निरंतर पुरातत्ववेत्ताओं की आवाजाही से प्रदेश की विधानसभा में यह प्रश्न उछला कि ''ये भीमबैठका क्या है ?''

इण्डियाज कॉन्ट्रियूशन टू द वर्ल्ड थॉट

अपनी विदेश यात्राओं में वाकणकरजी ने अनुभव किया कि विदेशों में भारतीय लोगों और उनके अवदानों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। भारतीय उन्नति, समृद्धि और योगदान को विदेशों में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने की प्रामाणिक कसमसाहट से उपजी अभिनव-कल्पना का परिणाम था सन् 1984 में उनके द्वारा अमेरिका में आयोजित प्रदर्शनी 'इण्डियाज कॉन्ट्रिब्यूशन टू द वर्ल्ड थॉट' और तत्संबंधी जगह-जगह उनके द्वारा दिए गए सारगर्भित सप्रमाण

व्याख्यान। कई वर्षों के निरंतर अध्ययन, चिंतन व मनन से उन्होंने इन प्रदर्शनी के लिए आधुनिक युग में की गई एक सौ तेईस खोजों की फोटो के साथ संपूर्ण जानकारी, प्राचीन भारतीय ग्रंथों में उन खोजों के संदर्भ में दिए संस्कृत श्लोकों तथा उसके अंग्रेजी अनुवाद को उन्होंने इसमें संयोजित किया। सन् 1986में इंग्लैण्ड के अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में भाग लेकर उन्होंने अंग्रेज इतिहासकारों की मैक्समूलर, स्मिथ अर्नेष्ट, मैके एवं व्हिलर के भारतीय इतिहास लेखन में किये गये षड़यंत्रों का पर्दाफाश किया।

वाकणकर जी ने अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् नव सामाजिक जागरण के लिए न सिर्फ असम और गोहाटी के क्षेत्रों का गहन भ्रमण किया वरन् वैदिक सरस्वती नदी शोध अभियान का महत्वपूर्ण नेतृत्व किया। इसके अंतर्गत उन्होंने वैदिक साहित्य, इतिहास, पौराणिक परम्परा व तीर्थ स्थानों लोक साहित्य एवं मान्यताओं का गहन अभ्यास और सामग्री संचय कर 'सरस्वती कोश' के लिए रचना सामग्री जुटाने के साथ ही एक विषद् वीडियो फिल्म तैयार की।

भारतीय पुराततव के इतिहास में बीसवीं शताब्दी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी के पूर्वार्द्ध में जहां मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा संस्कृति की खोज हुई वहीं शताब्दी के मध्य में भीमबैठका की खोज हुई एवं उत्तरार्द्ध में सरस्वती नदी की खोज हुई। बीसवीं शताब्दी की इन खोजों ने विश्व का इतिहास बदल दिया है। भारत का उभरता पूर्व वैभव देखकर विश्व आज चकित एवं अचंभित है। ये सारी उपलब्धियाँ वाकणकर जी जैसे ध्येयनिष्ठ, कर्मठ, दृष्टा एवं राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत अलौकिक तपस्वीयों की निष्काम साधना का परिणाम है।

सहजता, सरलता, आत्मीयता की त्रिवेणी

वाकणकर जी तमाम कुशाग्रता, विद्वत्ता, कलागुणों, अद्भुत शोधवृत्ति के बावजूद इतने सहज, सरल और आत्मीय थे कि उनके विभिन्न आयु वर्गों, विभिन्न आर्थिक, विभिन्न मानसिक स्तरों के सभी व्यक्तियों से एक से संबंध थे। स्थानीय ग्रामीणों के बीच भी पुरातत्वीय कार्य करते हुए उनके ऐसे आत्मीय संबंध हुआ करते थे कि ग्रामीण न सिर्फ इस ऐतिहासिक धरोहरों पुरा महत्व की वस्तुओं से रूबरू होते थे वरन् उसके प्रति जागरूक भी बनते थे। वे स्थानीय लोगों को स्थानीय स्तर पर ही संग्रहालय बनाने की प्रेरणा भी देते थे और उन्हें इसकी महत्ता से रूबरू भी कराते थे। पुरा महत्व की वस्तुओं की ऐतिहासिक व राष्ट्रीय महत्ता के बारे में सामान्य लोगों में उनके द्वारा निर्मित जाग्रति का ही परिणाम रहा कि वाकणकर जी के यहाँ, यहाँ वहाँ प्राप्त पुरामहत्व की वस्तुओं / अवशेषों का समृद्ध संग्रह लोगों के सहयोग से आकारित हो सका।

डॉ. वाकणकरजी ने 1986में अपनी चार हजार वर्गफुट की अचल सम्पत्ति और मकान देकर ''वाकणकर भारती संस्कृति अन्वेषण न्यास'' की स्थापना कर कला, संस्कृति, पुरातत्व की उन्नति के लिए अनुपम भेंट दी।

11 बी, राजेन्द्र नगर, इंदौर-452012 (म.प्र.),
मो. 9425314422, 8085359770

पं. विजय शंकर मिश्र कला रत्न सम्मान से सम्मानित

29 अप्रैल को ग्वालियर में विश्व नृत्य दिवस के अवसर पर उपज अकादमी ऑफ परफार्मिंग आर्ट्स द्वारा पं. विजय शंकर मिश्र को कला रत्न सम्मान से सम्मानित किया गया है....

भीमबैठका-एक परिचय

भीमबैठका, मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से 40 कि.मी. दूर भोपाल-होशंगाबाद मार्ग पर औबेदुल्लागंज से दक्षिण में 6कि.मी. दूर एक पहाड़ी स्थान है।

भीमबैठका की प्राकृतिक रमणीयता, कलात्मक चित्रकारी और प्रागैतिहासिक अवशेष तीनों क्रमशः कवि, कलाकार और पुरावेत्ता को समान रूप से अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम हैं।

नामाभियान और खोज

भीम बैठका शब्द से 'भीम की बैठक' का भावार्थ निकलता है। वस्तुतः इस क्षेत्र का सर्वाधिक विशाल एवं गगनचुम्बी चट्टान ही भीम बैठका कहलाती है और यह नाम स्थानीय निवासी गोंड जाति के लोगों का दिया हुआ है।

इसे भारतीय प्रागैतिहास के प्रकाश में लाने का श्रेय पद्म श्री डॉ. वाकणकर को है जिन्होंने सन् 1957 में इसे खोजा। वे तब नागपुर यात्रा में यहाँ से पास हो रहे थे। यहाँ की विशाल दुर्गनुमा चट्टानें और अपूर्व प्राकृतिक एवं भौगोलिक संरचना ने उनके हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न की और वे निकट के ही बरखेड़ा स्टेशन पर उतर गये। यहाँ से उन्होंने इस दुर्गम वन्य प्रदेश की ओर कदम बढ़ाये और उन शैलाश्रयों तक पहुँच गये। वर्षों तक यहाँ शैलाश्रयों को वे खोजते रहे।

और अन्त में वर्षों के अध्ययन-अनुसंधान के पश्चात् उन्होंने इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचा दिया।

यदि हम इसे ''शैलचित्रों की अजन्ता'' "The Ajanta of Rock painting" कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

डॉ. वाकणकर की इस खोज ने बाद में अनेकानेक विश्व विद्यालयों और पुरातत्व संस्थाओं को अपनी ओर आकर्षित किया और अब तक की पुरातात्विक उपलब्धियों में विक्रम विश्वविद्यालय के अतिरिक्त डेक्कन कॉलेज पूना, सागर विश्वविद्यालय, बाझेल विश्वविद्यालय स्विट्ज़रलैण्ड ने बहुत कार्य किया है।

डॉ. एन.आर. बनर्जी के मतानुसार

भीम बैठका के अन्वेषक, स्वयं डॉ. वाकणकर के शब्दों में- ''भीमबैठका उत्खनन की उपलब्धियाँ असामान्य हैं। यहाँ से प्राप्त संस्कृति क्रम अनूठा है। क्योंकि इस काल में बने शैलचित्रों ने उस गवाक्ष को खोल दिया है जिससे हम प्रागैतिहासिक मानव के अपरिमित सांस्कृतिक भण्डारों का अवलोकन कर सकें।''

भीमबैटका का सांस्कृतिक क्रम

भीमबैठका से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री और शैलाश्रयों के चित्रों से हम यहां के सांस्कृतिक इतिहास को निम्नलिखित कालों में विभाजित कर एक व्यवस्थित क्रम दे सकते हैं।

(1)पुरापाषाण काल :- भीमबैठका में प्रागैतिहासिक काल से ही एक मानव संस्कृति के अवशेष मिलने लगते हैं। यह काल इतिहास में मानव के आदिम विकास से पाषाणकाल तक चलता है। यद्यपि उस समय यहाँ की जलवायु और प्राणी जीवन कैसा था इसके प्रमाण अभी नहीं मिले हैं किन्तु ऐसा अनुमान है कि आद्यगज (स्टेगेहान दरियाई घोड़ा हिप्पो पोटोमस), वन महिष, आद्य वृषक जैसे प्राणी उस समय यहाँ के वनों में स्वच्छन्द विचरण करते थे।

कुछ समय पश्चात् वातावरण में परिवर्तन आया और यहां के शैलाश्रयों में आदिमानव ने शरण ली। इन शैलाश्रयों में प्राचीनतम आवास करने वाले वे थे जिन्होंने सर्वप्रथम यहाँ के पत्थरों से गोलाश्म (पेछलटूल्स), अघातक (चापर्स टूल्स) बनाये। ये उपकरण उसके शिकारी जीवन-निर्वाह अवस्था के ही द्योतक हैं।

(2)मध्य पाषाण काल :- यहाँ के अनेक शैलाश्रयों के उत्खनन के स्तरों से मध्य पाषाण काल के अवशेष प्राप्त हुए हैं। अब तक आखेटार्थ मानव का संचार सार्वक्षेत्रिक याने नदी घाटी से उत्तुगपर्वतों तक उसकी पहुँच हो गई थी। धनुष-बाण का आविष्कार हो चुका था जो कि शैलचित्रों से प्रमाणित होता है।

इस काल में सामुदायिक भावना और सामाजिक गतिविधियाँ भी विकसित हुईं और चित्रकला में उसने पहले से अधिक तत्कालीक

सांस्कृतिक जीवन के चित्र बनाये। इस काल के चित्र हरे रंग के अधिक हैं, यह स्थानीय उत्खनन में भी प्राप्त हुआ है।

भीमबैठका में यह काल 25000 वर्ष पूर्व तक जाता है। इस काल के धार्मिक विश्वास, शवाधान और उसके सामाजिक जीवन के प्रमाण उत्खनन और शैलचित्र दोनों से प्राप्त होते हैं।

(3)ताम्र पाषाण काल :- ताम्र पाषाण काल प्रागैतिहास में मनुष्य के धातु प्रयोग करने के समय से प्रारम्भ होता है और पाषाण उपकरणें के स्थान पर अब धातु प्रयोग, कृषि एवं पशुपालन करके स्थिर जीवन-यापन प्रारम्भ होता है।

इन निखातों में अस्थिपात्र, धातु उपकरण, आभूषण मृणपात्र और प्रारम्भिक आवास के अनेक प्रमाण मिले हैं जिनके आधार पर हम यहाँ के धातुयुगीन जीवन का एक चित्र खींच सकते हैं। यही नहीं शैलाश्रयों में तत्कालीन जीवन के बहुआयामी, बहुरंगी चित्र भी इसको प्रमाणित करते हैं। अब तक वह धार्मिक संस्कारों के विषय में भोजन, वस्त्र, व्यापार कृषि एवं दल-संघर्ष, संगीत, कला आदि विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों पर आगे बढ़ चुका था।

सामूहिक नृत्य, बाजनी शिलाओं से संगीत, घर-द्वारों में तोरण अलंकृत करना, वस्त्रों में विविधता, अलंकरणों का प्रयोग सामाजिक उत्सव आदि के बने चित्र प्राप्त होते हैं जो हमें तत्कालीन सामाजिक जीवन के संकेत देते हैं।

(4)ऐतिहासिक काल :- भीमबैठका में यद्यपि ऐतिहासिक काल का कोई व्यवस्थित क्रम नहीं मिलता तथापि कुछ फुटकर भग्नावेशों और सामग्रियों से हम विभिन्न प्रमाण पाते हैं।

सर्वप्रथम यहाँ बौद्धकालीन आवास प्राप्त होते जो सामान्य पत्थरों की दीवारों से बनाये गये। कुछ स्तूपों के प्रारम्भिक स्मारक हैं, धातु मुद्राएं हैं जो मांडू सुल्तान और मुगलकाल से सम्बन्धित हैं। धातु के उपकरण, मृद्भाण्ड भी पाये गये हैं। आभूषण और मणियां भी मिली हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित चित्र भी यहां पाये गये हैं किन्तु उनके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है।

भीमबैठका की चित्रकला

भीमबैठका की प्रमुख विशेषता उसके चित्रित शैलाश्रय ही हैं जो भारत में सर्वाधिक प्राचीन और बहुसंख्यक हैं। ये शैलचित्र उत्खनन से कहीं अधिक हमें यहाँ के सांस्कृतिक जीवन की सूचना देते हैं।

डॉ. वाकणकर के अनुसार-

इस काल में बने शैलचित्रों ने उस गवाक्ष को खोल दिया है जिससे हम प्रागैतिहासिक मानव के अपरिमित सांस्कृतिक भण्डारों का अवलोकन कर सकें। वह भण्डार गुफाओं की भित्तियों पर उसकी प्रभावी तूलिका से अंकित हैं। ये शैलचित्र जहाँ एक ओर तत्कालीन जन-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी ओर चित्रकला के उदय और विकास के इतिहास को जानने में भी योग देते हैं।

शैलचित्रों का तिथिक्रम

ये चित्र कब से प्रारम्भ हुए और कब बन्द हुए इस विषय में निश्चित रूप से कहना या इनके तिथिक्रम को कालानुसार सीमा रेखा में बाँधना बहुत कठिन है, किन्तु यह निश्चित है कि भीमबैठका के शैलचित्र यहीं के प्राज्ञ मानव (MOMOSPAIN) की देन है। अत: इसका काल पाषाणकाल के लगभग ही रख सकते हैं।

मोटे रूप से मध्य पाषाण, जिसका समय 25000 वर्ष पूर्व के लगभग माना जाता है, मैं यहाँ चित्रकला विकसित हुई और 10 वीं-11वीं सदी तक चित्र बनते रहे। उधर पाषाणकाल में अब धनुर्धारी मानव आखेट के पश्चात् अपने रिक्त समय को कलात्मक सृजन में लगाने लगा था। यही समय इस चित्रकला के आरम्भ का उपयुक्त काल हो सकता है। यहाँ पर मौर्यकाल (400 ई.पू.) तक चित्र बनते रहे। लगभग 1000 से अधिक शैलाश्रयों में आधे (500 लगभग) चित्रित शैलाश्रय हैं और विभिन्न युगों की कहानी को बताते हैं।

रंग, क्षेत्र और विषय सामग्री

ये चित्र हरे, लाल, पीले, गेरूए और श्वेत हैं जो हिडमची, गेरू, चूना और स्थानीय वातावरण में पाये जाने वाले प्राकृतिक रंगों के पदार्थों से बनाये जाते थे।

इन चित्रों को उत्कीर्ण करने के साधनों में मोर पंख या चिकनी वनस्पति के ब्रश के अतिरिक्त पाषाण उपकरण भी प्रयोग में लाये जाते थे। ये चित्र भीमबैठका, लाखाज्वार, जावरा, रायसेन चिकलोद, मलखार और भोपाल के आसपास के शैलाश्रयों में उत्कीर्ण हैं। यह क्षेत्र विन्ध्य पर्वतमाला के अन्तर्गत मीलों लम्बा फैला हुआ है।

ये चित्र विभिन्न कालों में विभिन्न मानवीय और तत्कालीन जन-जीवन से सम्बन्धित गतिविधियों के हैं। इसमें उसके जंगली जीवन से ऐतिहासिक काल तक के जीवन का जन्म से शवाधान तक का चित्रण हुआ है। यद्यपि इन समस्त चित्रों का अभी तक व्यवस्थित अध्ययन नहीं हो पाया है किन्तु फिर भी हम उससे तत्कालीन जन-जीवन का एक चित्र इस प्रकार खींच सकते हैं-

एक जीवन-झाँकी

भीम बैठका का शैलाश्रयी मानव उस समय वन्य फल पदार्थ के अतिरिक्त शिकार भी करता था। आखेट और मधुसंचय के चित्र मिलते हैं। वह विभिन्न प्रकार के मुखौटे लगाता था। तीर-धनुष साथ रखता था। हिरण, शेर, चीते, हाथी और चिड़ियाँ आदि पक्षियों का शिकार करता था। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों विभिन्न प्रकार के आभूषण और अलंकरण धारण करते थे। वस्त्र, शृंगार का प्रचलन हो गया था। सामूहिक नृत्य संगीत ओर सामाजिक उत्सव के अनेक दृश्य यहाँ अंकित हैं। पारिवारिक जीवन और घर सज्जा से सामुदायिक भावना के प्रमाण मिलते हैं। धार्मिक मान्यताएँ और विश्वास का भी प्रमाण मिलता है। मातृ-उपासना, दैवीपूजा प्रारम्भ हो गई थी। शवाधान संस्कार किया जाता था।

(संकलन- ललित शर्मा, झालावाड़)

■

आलेख

हाड़ौती क्षेत्र की पुरातात्विक सम्पदा में वाकणकर जी का अवदान

डॉ. मुक्ति पाराशर

सभ्यता व संस्कृति मानव जीवन का ऐसा दर्शन है, जिसमें मानव अतीत की घटनाओं से रू-ब-रू होकर नए समाज का निर्माण करता है। इसमें अनगिनत कहानियाँ, जानकारियाँ व कई कलात्मक अस्तित्व के प्रमाण छिपे हैं। इन सभी को जानने एवं समझने का एक महत्वपूर्ण तत्व है- पुरातात्विक कला सम्पदा के इतिहास को जानना।

डॉ. वी.एस. वाकणकर जी ने इसी उद्देश्य से हाड़ौती की प्राचीनतम् कला सम्पदा को प्रकाश में लाने का एक प्रयास किया।

हाड़ौती क्षेत्र में डॉ. वाकणकर ने अपना शोध कार्य सन् 1953 ई. से प्रारम्भ किया। उन्हें किसी ने भवानीमंडी, झालावाड़ के निकट के खदान क्षेत्र से लघु अश्मोपरकरण ला कर दिये जो कि एक चाकू था जो स्फटिकाश्म का बना था। उनके अनुसार यह मोहनजोदाड़ो व हड़प्पा से साम्य रखता था। इसी प्रमाण के उत्साह में डॉ. वाकणकर ने गागरोन, दर्रा, डग, कोलवी, विनायगा व झालावाड़ क्षेत्रों में, प्रताप सागर, जवाहर सागर, लाडौली, भैंसरोडगढ़, पाटन, हरिपुरा आदि क्षेत्रों का भ्रमण व सर्वेक्षण किया। इस क्षेत्र में उन्होंने गंगधार, चौमहला में ताम्राश्मीय अवशेष प्राप्त हुए थे। यह पाषाण काल का प्रमाण था। डॉ. वाकणकर ने पाषाण युग की जगह अपने लेखों में वैदिक अश्म उपकरण तथा अश्म हव्य, अश्म चक्र आदि के कारण अश्वयुग शब्द का प्रयोग किया था। उनकी खोज के स्तर में पूर्वाश्मयुग मानव विकास का प्रथम चरण माना जाता है। अफ्रीका में इस समय आद्यमानव रहता था जो कि गोलाश्म (Pebble) उपकरण बनाता था। यह नदी के गोल पत्थरों को नोकदार या धारदार बनाता था जिसे उस समय का मानव इसका प्रयोग कंदमूल उत्खनन या मांस आदि काटने में प्रयुक्त होता था। अफ्रीका में यह समय 20-25 लाख वर्ष पूर्व का माना जाता है।

भारत में भीमबैटका के शैलाश्रयों के उत्खनन में उन्हें ऐसे उपकरण सर्वातिनिम्न स्तर पर प्राप्त हुए। ऐसे ही उपकरण उन्हें अन्य जगह के शैलाश्रयों में मिले, जहाँ प्रागैतिहासिक मानव निवास करता था। इसके निवास के सबसे महत्वपूर्ण एवं प्राचीन प्रमाण कोलवी नामक उत्कीर्ण गुफाओं के निकट व खेजड़िया भूप की पहाड़ी पर मिले हैं। इस क्षेत्र में अर्ली पेलियोलिथिक के गोलाश्म (पेबल) उपकरण मिले। यह तो प्रमाणित है कि सर्वसाधर गोलाश्म उपकरण का प्रयोग करने वाला मानव मालवा व राजस्थान में विचरण किया करते थे।

हाड़ौती में गोलाश्म उपकरण उन्हें भैंसरोडगढ़ तथा बाड़ौली के बीच, चम्बल के किनारे पर व कोटा के अधरशिला के ऊपर वाले लोहमृत्तिका मैदानों में तथा झालावाड़ में कालीसिंध के तट पर प्राप्त हुए हैं। प्रारम्भिक मानव सभी चीजों से अनमिल था वह न कृषि, वाणिज्य, पशुपालन कुछ नहीं करता था। वह अधिकतम नदी तीरों पर ही रहता था, न कोई राज्य न राजा न दण्डिक था बस, सब परस्पर सहयोग धर्म से रहा करते थे।

डॉ. वाकणकर के अनुसार धीरे-धीरे मानव प्रगति की ओर बढ़ा तथा अफ्रीकी व फ्रांसिसी अश्वयुगीय (Acheulian) उपकरणों की तरह हाड़ौती क्षेत्र में भी प्रमाणिक आधार पर चित्र व उपकरण प्राप्त हुए। इनमें अश्यूलीथ, कुदाल, कुठार, तक्षणी आदि उपकरण मिले जो अनुमानत: 1 से 5 लाख वर्ष के मध्य के हैं। इन उपकरणों से हाथी, दरियाई घोड़ा, महिष, गैण्डा, वृषभ आदि प्राणियों से संघर्ष में मानव का विनाश होता था। अत: आज से 70 हजार से 1 लाख वर्ष पूर्व के मध्य युरोपीय निअण्डर्थल मानव के समान भारतीय मानव ने सेडस्टोन पर छोटे उपकरण बनाना शुरू किया तथा इसी शैली से डेक्कन ट्रेप वाले क्षेत्र में स्फटिकाश्म पर छोटे उपकरण तथा भल्लाग्र, तक्षणियाँ, शराग्र, बहुभुज तक्षित गर्भ, व सूचि की खोज की।

भालों के आविष्कार ने मानव जीवन को अधिक सुरक्षित कर दिया। हो सकता है कि सामाजिक विकास का प्रारम्भ होने से व महिलाओं की भी भागीदारी बढ़ी होगी, व्यवसाय बढ़ा होगा व शिकार की बढ़ोत्तरी के कारण कतिपय इस मानव ने स्फटिकाश्म की खदानों

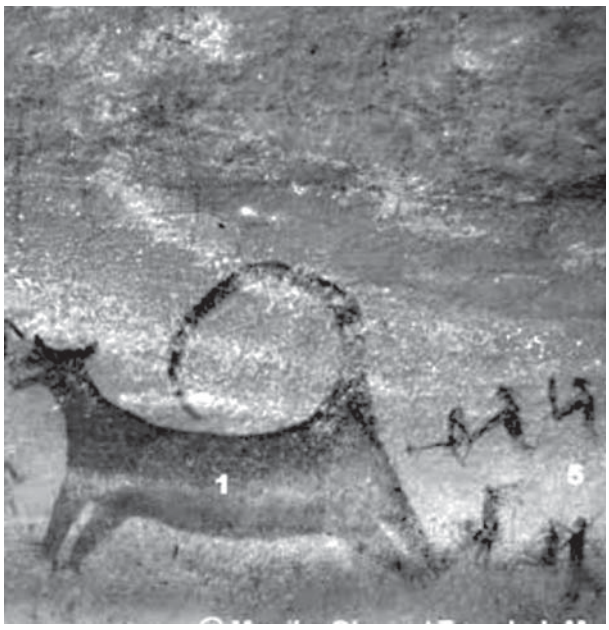

के निकट उपकरण बने होंगे।

डॉ. वाकणकर को इसी युग का भौमिकता तक्षणिया सुनेल के पास झिकड़िया ग्राम के पास मिले थे। इसी क्रम में सिकताश्म पर बने मध्य पुराश्मीय उपकरण भैसरोडगढ़, प्रतापसागर, कोटा, दर्रा व सुकेत आदि कई स्थलों पर प्राप्त हुए। दोनों का काल 1 लाख से 30,000 वर्ष के मध्य है। इसी युग के कोटा क्षेत्र के जल प्लावित स्तरों के मध्य उत्तर में हीरण तथा आधवृषभ (वॉस गोरल) के जीवाष्म प्राप्त हुए। डॉ. वाकणकर के अनुसार चम्बल व कालीसिंध आदि नदियों में नदी रेती पत्थरों से प्रमाणित होता है कि इस युग में दो भयंकर जल प्रलय इस प्रदेश में लगभग 70 से 40 हजार वर्ष पूर्व में आये थे। जिसके पश्चात् जलवायु में परितर्वन से सम्पूर्ण भारत में 10–12 हजार वर्षों के सम्पूर्ण खुश्क जलवायु हो गई और जंगल समाप्त हो गये, कहीं–कहीं घास बची व प्राणियों में भी परिवर्तन हुआ।

हाड़ौती क्षेत्र में डॉ. वाकणकर जी की खोज से आज तक कई शैलाचित्रों की खोज की जा चुकी है और अभी भी अनवरत जारी है।

अत: डॉ. वाकणकर जी के अनुसार उन्हें पुरातात्विक शैलाश्रयों के साथ मौर्यकालीन पात्र भी प्राप्त हुए। गंगधार में ताम्राश्मीय पात्र (1950) में मिले। हड़प्पा मोहनजोदाड़ो के समान मिट्टी की पुरुष आकृतियाँ भी प्राप्त हुईं। पुरातात्विक संदर्भ में यह खोज काफी महत्वपूर्ण है। अत: यह प्रमाणिक हो गया कि वाकणकर जी ने इस क्षेत्र में प्रागैतिहासिक जीवन के साक्ष्यों को खोज निकाला व आगे की पीढ़ी को इस क्षेत्र में खोज व शोध का विषय क्षेत्र प्रदान कर महत्वपूर्ण योगदान दिया।

– 164, आर्य समाज रोड, रामपुरा, कोटा (राज.)

पुरातत्वविद् डॉ. वाकणकर का पत्र ललित शर्मा के नाम सन् 1987

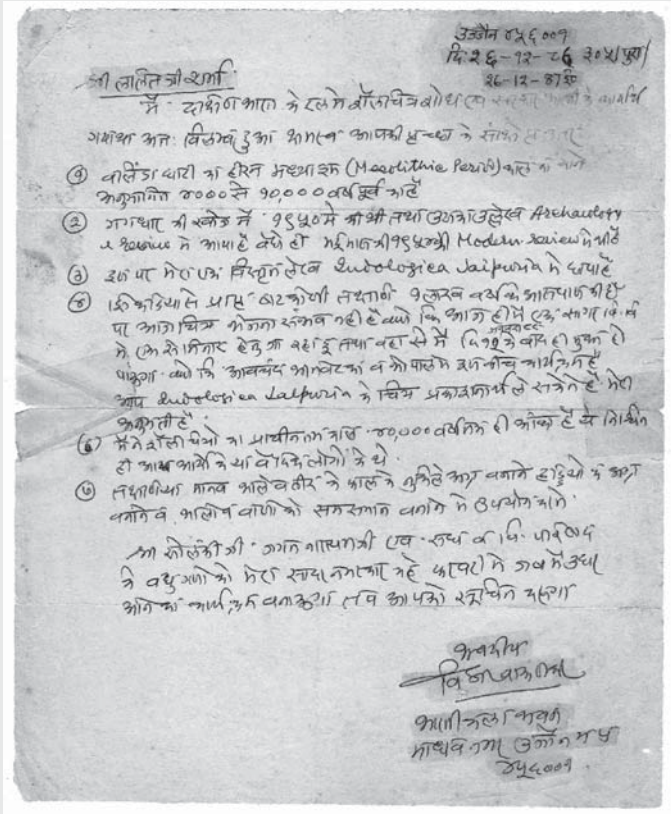

श्री ललित जी शर्मा

दि. 26-12-86 उज्जैन 456001

26-12-87

नमस्कार

आपका अन्तर्देशीय प्राप्त हुआ समाचार जानकर प्रसन्नता हुई।

(1) चालेंडा पारी का हीरन मध्याश्म (Mesolithic Period) काल का माना जाता है लगभग 8000 से 10,000 वर्ष पूर्व का है।

(2) सरवाण की खोज में 1950 में की गई तथा उसका उल्लेख Archaeology & Science में आया है वैसे ही मध्याश्म की 1954 की Modern Review में है।

(3) इस पर मेरा एक विस्तृत लेख Rajasthan Rajasthan Jaipur में छपा है।

(4) झिकड़िया से प्राप्त खटकोणी तक्षणी 9 हजार वर्ष की मानी जाती है पर आज चित्र भेजना संभव नहीं है क्यों कि आज ही मैं एक संस्था के लिये रेखाचित्र भेजने हेतु यहाँ से वहाँ तथा वहाँ से मैं फिर यहाँ के चक्कर ही घूमता रहा पाऊंगा क्यों कि आवश्यक मार्गदर्शक व फोटोग्राफ इत्यादि की व्यवस्था आपको Rajasthan Rajasthan Jaipur से चित्र प्रकाशनार्थ ले लेना है मेरा आकलन है।

(5) मैंने दोनों चित्रों का प्राचीनतम काल 30,000 वर्षों का ही आंका है ये चित्रित ही आदि मानवों ने या वनवासी लोगों ने थे।

(6) लघुपाषाण मानव आलेखनों के आलेखों के आधार पर बनाये हड्डियों के औजार बनाने व आदिम वाणी को समझने में उपयोग करें।

आपने जो लेखकों की जाति गोत्रादि एवं संघ की जानकारी चाही है वह मेरे पास नहीं है आपको ही अन्य लेखकों से मंगवानी होगी।

आपका
विष्णु वाकणकर

वाकणकर
मालवा उज्जैन (म.प्र.)
456001

आलेख

संस्कृति साधक : श्री वाकणकर

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

औपचारिक अध्ययन और अनौपचारिक चिंतनयुक्त धारणा, स्थूल पर्यटन और आत्मिक इच्छा के साथ नित्य, निरंतर टोही भ्रमण से प्राप्त फल- ये वैयक्ति विशेषताएँ डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर को भारतीय गहन अध्येताओं की सूची में शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। मालवा की भूमि पर अपने कदम, अपने हाथ, अपनी आँख, अपने मन तथा अपने चित्त को निवेदित कर भारती की मध्य प्रादेशिक भूमि के पुरातन सौंदर्य का उन्होंने प्रथमत: दिव्य साक्षात्कर किया।

यह भी कहा जा सकता है कि विद्ग्ध वाणीपुत्र वाकणकर के समक्ष विंध्यभू अपनी पौराणिक विशेषताओं के साथ प्रत्यक्ष हुई और उन्होंने जितने रूप में भूभारती को आत्मस्थ कर एक शिक्षक एवं लेखक के रूप में सयत्न परिभाषित करने का प्रयास किया, वह भी प्रेरणा के योग्य है।

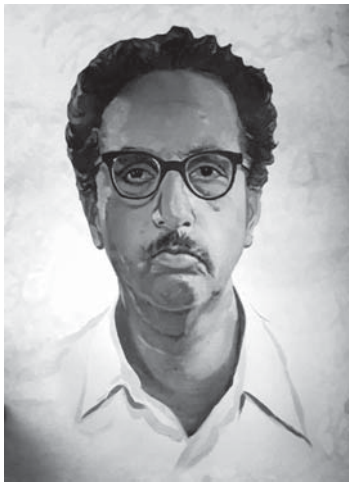

उनके बारे में मैं जब-जब पढ़ता और सुनता हूँ, मुझे पंचतंत्र के रचयिता विष्णु शर्मा का वह मत याद आता है जो उन्होंने बहुत विचार के बाद प्रकट किया था : यह जन्म उसी का सार्थक है जो देश-देश घूम-घूमकर भाषा, भाव-भूषा आदि का अध्ययन करता है और उसको आत्मस्थ करता है।

देशान्तरेषु बहुविध भाषा वेशादि येन न ज्ञातम्।
भ्रमता धरणीपीठे तस्य फलं जन्मनो व्यर्थम्।।

अनुभव के संचयन और उनको सोदाहरण प्रकट करने में परम प्रवीण विष्णु शर्मा यह भी कहते हैं कि कोई व्यक्ति भूमितल पर तब तक विद्या, वित्त, तकनीकी शिल्प तब तक अच्छी तरह नहीं जान पाता जब तक कि वह मुदित मन होकर यत्र-तत्र विचरण नहीं करता। यह लगावपूर्ण संचरण, एकनिष्ठ अध्ययन और उस पर सम्यक् विचार ही अनेक प्रकार के संकायों की शिक्षा, अनेक प्रकार की सम्पदाओं और अभीष्ट कार्य कुशलताओं को प्रदान करता है-

विद्यां वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्।
यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं ह्यष्टः।।

(मित्रभेद 430-431)

श्रीधर से चित्रधर :

डॉ. वाकणकर जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न थे और उन्हें पुरातन विषयों में जो रुचि थी, वह एक जन्म में अर्जित नहीं कही जा सकती है। आरंभ से ही वह अपने परिवेश और उसकी बनावट के भौतिक तथा प्रत्यक्ष स्वरूप की अपेक्षा अप्रत्यक्ष स्वरूप को प्रकट करने के विचार के पोषक थे। उनका व्याख्यान दिखावटी नहीं होता, वे स्वयं भी दिखते कम, लिखते कम लेकिन सोचते ज्यादा थे और प्रकट करने में बालमन सा भाव रहता था। आदिमानव, नर्मदा की घाटी, भीमबैठका, मंदसौर, चिब्बरनाला, हिंगलाजगढ़ आदि को समेटते हुए ऐसा लगता था कि मानों कितनी नदियाँ एकसाथ सागर संगम के लिए उमड़-घुमड़ रही हैं।

उज्जैन में मुझे उनके स्मरण के साथ दो संगोष्ठियों में बोलने का अवसर मिला। इनमें पुराणों के अध्ययन को लेकर महाकाल धर्मशाला में दो साल पहले आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी विशेष याद आती है। इसमें डॉ. वाकणकरजी के परिचित, सहयोगी डॉ. रहमान अली की अध्यक्षता में मैंने विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्रादि के परिचय को प्रस्तुत कर वाकणकरजी के शैलाश्रयों में चित्रागारों की खोजों का स्मरण किया। यह भी कहा कि तब विद्यार्थियों की कक्षाएँ कमरों में नहीं, शैलाश्रयों में लगती थी और आंखें चित्रों की विचित्रता पर लगी हुई होतीं और कान अतीत के अनाहदनाद को सुनते थे।

उनकी ये खोजें इतनी महत्वपूर्ण रहीं कि अध्ययन-सर्वेक्षण में अनेक शिष्यगण तैयार हुए और देश-विदेश में मध्यप्रदेश की उन पहाड़ियों को श्रीधर के साथ 'चित्रधर' कहा जाने लगा। पुरातत्ववेत्ताओं ने वहाँ के चित्रों के आधार पर प्रारंभिक मानव की गतिविधियों का अध्ययन किया और भारतीय संस्कृति और सभ्यता के चित्र-चिह्न के रूप में उनको स्वीकार किया। जनजातियों में वर्तमान तक विद्यमान रही वनोत्पाद संग्रह, आखेट, नर्तन जैसी परम्पराओं का उत्स उन चित्रों में देखने का यत्न किया। मुझे ये ताज्जुब होता है कि संग्रह के लिए संघर्ष की वार्ताएँ जनजातीय नृत्यों की मूल रही हैं और वे मालवा, बस्तर से लेकर मेवाड़-वागड़ तक समानत: मिलती हैं।

कायथा की पहचान वाले

उनके अध्ययन के केंद्र रहे कायथा और भीमबैठका में से कायथा मैं दो बार गया। पुरातत्व अध्ययन में कायथा संस्कृति की

धारणा उन्होंने ही दी, जिस पर प्रो. हंसमुख धीरजलाल सांकलियाजी ने मुहर लगाई थी। मेरे कायथा जाने के मूल में वाकणकरजी की 1967 ईस्वी वाली धारणाएँ ही थीं और चूँकि मैं मेवाड़ के आहाड़ में रहता हूँ तथा अब आहाड़ और कायथा संस्कृतियों को एक स्तर पर देखा जाने लगा है, तो मेरी जिज्ञासा का उदय होना लाज़मी ही था। फिर, यह वराहमिहिर की जन्मस्थली कपित्थक के रूप में ज्ञात है जैसा कि बृहज्जातक में इस नगरी का नाम आया है। यह वैसे ही नदी के तटवर्ती टीले पर बसी है, जैसे आहाड़ नदी के पास पुरातन टीले सीना ताने हुए हैं। मैंने कायथा को दोनों ही बार वाकणकर जी वाली निगाहों से ही देखा। लौटकर जब मैंने कायथा के बारे में आहाड़ वालों को बताया तो दोनों में रोचक समानताओं पर भी चर्चा शुरु हुई।

मैंने वाकणकरजी की धारणओं को सांकलियाजी के मार्फत पढ़ा था और उन्होंने जो कुछ संभावनाएँ दी थीं, वे उनके पूरण के पीछे भी मैं विचार करता रहा हूँ। कायथा को लेकर वाकणकरजी की धारणा इतनी मजबूत थी कि नदियों ने मानवीय सभ्यता को कितना कुछ दिया, यह वस्तुओं के मिलने से ज्यादा उन बातों पर भी निर्भर करता है कि मेवाड़ और मालवा की नदियों में ऐसा क्या था कि उनके गुण-धर्म को चिकित्साविदों ने भी जानकर प्रथमत: लिखा। क्यों मत्स्यपुराण के रचनाकार ने यह लिखा है कि इन पहाड़ियों के इर्द-गिर्द वे जनजातीय समूह संचरण के साथ निवास करते हैं जिनको इन नदियों ने पोषण दिया है। इन नदियों के जल से जिनको जीवन मिला है। इसलिए भी कि इनके मुहाने की मिट्टी ने बर्तन होकर व्यवहार के क्षेत्र को विस्तार दिया है।

यद्यपि कायथा में खुदाई का काम बहुत छोटे पैमाने पर हुआ और काली सिंध नदी के तट पर हुआ। लेकिन यह निश्चय पूर्वक कहा गया कि नावडाटोली के तीनों प्रकार के काम कायथा में एकदम अलग-अलग स्तरों से एक के नीचे एक प्राप्त हुए। यहां का समय ईसापूर्व 2000 तक चला जाता है और यह संयोग की ही बात है कि इन तीनों ही संस्कृतियों का संयुक्त प्रवाह नर्मदा नदी के तट पर पहुंच गया है। मिट्टी का काम मालवा और मेवाड़ के बीच एक सेतु का भी काम दिखाई देता है।

उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय का पुरातत्व संग्रहालय उनके सपनों का प्रतिरूपण करता प्रतीत होता है। वहाँ के प्रभारी श्री रमण सोलंकी कहते हैं कि पुराविद् श्री एम.बी. गद्रे ने स्थापना के समय जो धारणा दी, उसका विकास और विस्तार डॉ. वाकणकर ने किया। उज्जैन के स्वरूप को लेकर बौद्ध।, जैन ग्रंथों, पुराणों आदि में जो विवरण मिलता है, उस छवि को साकार करने की दिशा में यह संग्रहालय एक महत्वपूर्ण सोपान है।

-40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर, उदयपुर-313001 (राजस्थान)

संस्मरण

डॉ. वाकणकर- मेरे पिता

डॉ. भारती श्रोती

प्रात: स्मरणीय डॉ. वाकणकर मेरे लिए पितृ तुल्य थे। मेरे नाना स्व. राधाकृष्ण पुराणिक धार जिले की कुक्षी तहसील के निवासी थे। एक बार डॉ. वाकणकर कुक्षी में अत्यधिक बीमार हो गये थे। मेरे नाना उन्हें अपने घर ले आये, मेरी नानी ने उनकी सेवा की, वे स्वस्थ हो गये। वे मेरी नानी को अपनी माँ के समान मानते थे तथा मेरी माँ को बहिन मानते थे। मेरे स्व. पिताजी श्री कृष्णकान्त जोशी शाजापुर में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के पद पर पदस्थ थे। डॉ. वाकणकर शाजापुर आये थे तो वे हमारे घर मिलने आये। तत्पश्चात् मैं प्राचीन-भारतीय इतिहास में एम.ए. कर रही थी तथा मेरे पिताजी उज्जैन में पदस्थ थे वे प्राय: हमारे घर जब भी नानी आती तो वे मिलने आते थे।

मेरे एम.ए. के पश्चात जब मैं पी.एच.डी. कर रही थी तब मेरे मार्गदर्शक वाकणकर जी ही थे। पी.एच.डी. के पूर्व उन्होंने मुझसे कहा कि तुम मेरी पुत्री समान हो किन्तु तुम्हें मेरे साथ साईकिल पर सर्वे करना होगा। तुम मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगी तब भी तुम मेरा मार्गदर्शन में कार्य करना। उन्होंने मेरी परीक्षा ली। उसमें मैं सफल रही तब उन्होंने स्वीकृति दी। वे अपने नियमों के पक्के थे।

एक बार उन्होंने मेरे पिताजी से जिक्र किया कि मेरी इच्छा भारती का कन्यादान करने की है। मेरे पिता जी उन्हें तत्काल स्वीकृति प्रदान की। भाग्य से मेरा विवाह उज्जैन मं मध्य प्रदेश विद्युत मंडल में कार्यपालन यंत्री के पद पर कार्यरत श्री महेश कुमार श्रोती से तय हुआ, तब वे अमेरिका में थे। किन्तु भाग्यवश व दिनांक 23-11-82 को उज्जैन आ गये तथा उनकी इच्छानुसार मेरा कन्यादान वाकणकर जी की इच्छानुसार हुआ। मेरे पिता डॉ. वाकणकर अत्यन्त सादगी प्रिय लगनशील शिष्यों को ऊपर उठाने वाले मेरी उनको विनम्र श्रद्धांजलि है।

- म.नं. 33, तक्षशिला परिसर, राजेन्द्र नगर पुलिस थाने के पास, इन्दौर-452012, मोबा. 98961-13820

संस्मरण

कर्मयोगी डॉ. वाकणकर

डॉ. रेखा भटनागर

डॉ. वाकणकर की ख्याति कला-पुरातत्व दोनों में है। वे कला-सृजन के साथ ही पुरातत्व में सिद्धहस्त थे इसलिए ही खोज के साथ-साथ शैलचित्रों की अनुकृतियाँ शीघ्र कर लेते थे। मैंने अपने बचपन से ही उन्हें चित्रकला जगत में देखा। चित्रकला जगत में रेखांकन का महत्व सर्वविदित है यह चित्र रचना का प्रथम रूपप्रद आधार है। सर्वाति प्राचीन कला रेखात्मक है, जिसे प्रागैतिहासिक काल की कला के रूप में जाना जाता है। ऐसे शैलचित्रों की खोज, अध्ययन, प्रतिलिपि अंकन में गुरूवर्य डॉ. वि. श्री वाकणकर ने अपना जीवन सार्थक किया। वे प्राचीन सभ्यता-संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान् होने के साथ ही कलामनीषी भी थे।

उन्होंने विपुल मात्रा में दृश्य चित्र, रेखांकन और व्यक्ति चित्र बनाए। जो मिल गया उस पर तत्काल कार्य शुरु करना उनका स्वभाव था। विश्व भ्रमण के दौरान उन्होंने अनेक रेखाचित्र और दृश्य चित्रण किये। आकृति संयोजन में सादगी, ठेठ भारतीयता, मूर्तियों की अनुकृतियाँ, कलात्मक मुखाकृतियाँ, सुदृढ़, देहयष्टि, अनुपात एवं भावमुद्रा उनकी विशेषता रही। कालिदास साहित्य से अनुप्रेरित उनके संयोजन रंग-रेखाओं के सौम्य, लुभावने और रंग संगति की प्रौढ़ता दर्शाते हैं। उनके चित्र रूप निरूपण, गति-लय, विविध रंग संगतियों से श्रेष्ठता लिये हुए हैं। उन्होंने स्वयं सिद्धि प्राप्त की और मित्र एवं शिष्य मण्डल तैयार किया। स्वयं की कला प्रदर्शनियों का देश-विदेश में आयोजन किया। ताम-झाम से परे ऐसी प्रदर्शनियाँ भी बड़ी मात्रा में लगाईं जिनसे भारतीय संस्कृति और सभ्यता की विलुप्त मगर श्रेष्ठ गुणवत्ता उजागर हुई। जन-मन में कला, पुरातत्व और संस्कृति के प्रति ऐसा रुझान कायम किया कि वह आज भी विद्यमान है और जागरूक रचनाकर्मियों का प्रेरक बना हुआ है। विदेशियों के सम्पर्क में बार-बार रहने पर भी वे उनकी संस्कृति से ऐसे प्रभावित नहीं हुए कि उनमें रम जाये। लेकिन उन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले विदेशियों को भारतीयता से ऐसे प्रभावित किया कि उन पर अच्छा रंग चढ़ा। डॉ. वाकणकर की कलाकृतियाँ प्रश्न नहीं उठातीं, उन्हें देखते ही समझा जा सकता है। उनमें चाक्षुष सौन्दर्य और सादृश्यता विपुल मात्रा में है। आधुनिक कलाकृतियों का विपुल भण्डार देखने और विश्व प्रसिद्ध आधुनिक चित्रकार पिकासो तथा सैयद हैदर रज़ा के संपर्क में रहने पर भी वे विशुद्ध भारतीय चित्रकार बने रहे। ऐसा रजा में भी है, मगर उनकी प्रतीकात्मकता गूढ़ है। मालवा की रंगारंग रंगतें डॉ. वाकणकर के दृश्यचित्रों और व्यक्तिचित्रों में मुखर हैं। डॉ. वाकणकर ने अपनी कला गुणवत्ता अपने विस्तृत शिष्य मण्डल में अनुस्यूत कर दी।

सन् 1953 में डॉ. वाकणकर ने उज्जैन में जो 'भारती कला भवन' स्थापित किया वह आज भी गतिशील है। वह मुंबई की एलीमेन्ट्री एवं इंटर मीडिएट ग्रेड ड्राइंग परीक्षाओं का केन्द्र है। भारतीय कला शिक्षण जगत में मध्यप्रदेश का अपना महत्व है। सर्जनात्मक कलाओं की श्रीवृद्धि के लिए भारत भवन और परिषदें व अकादमियाँ हैं। उन सब में डॉ. वाकणकर का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष योगदान रहा है।

डॉ. वाकणकर के कला क्षेत्र में किये प्रायोगिक और सैद्धांतिक, साथ ही शोधात्मक कार्य, विपुल भ्रमण से अर्जित अनुभव का ब्यौरा एवं विवेचन इस पुस्तक में उल्लखित है। उनका यह कार्य उन्हें व्यक्ति से पूरे संस्थान के रूप में सजीव खड़ा कर देता है। इसीलिए वे चलती-फिरती विश्व संस्कृति कहलाते हैं।

डॉ. वाकणकर के द्वारा चित्र एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में किये गये सृजन को इस पुस्तक में मूल्यांकित-वर्णित किया है, जो इसके पूर्व तक कहीं दर्ज नहीं हुआ। उनके हजारों रेखांकन, जल व तेलरंगीय चित्र किसी सिद्ध कलाकार से कम नहीं हैं। उन्होंने अपनी एकल व समूह प्रदर्शनियाँ कर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। उनके रेखाचित्र एवं जलरंगीय दृश्यचित्र, व्यक्तिचित्र देखते ही बनते हैं। आधुनिक समय के

प्रतिष्ठित कलाकार पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के रेखांकनों से प्रभावित हुए।

उनके रेखांकन सभी शिष्यों के पास मिल जायेंगे। दृश्य, व्यक्ति तथा वास्तु अंकन उनकी रेखाओं में अपनी अलग पहचान रखते हैं। उन्हें अच्छे कागज, तूलिका, अच्छी कंपनी के रंग, केनवास, फ्रेम आदि की जरूरत नहीं थी, जो मिल गया उसी पर तत्काल कार्य करना उनका स्वभाव था। वे प्रतिदिन रेखांकन करते थे। इसी से वे विपुल मात्रा में दृश्यचित्र, रेखांकन, व्यक्तिचित्र बना सके। वे रेखांकन प्रवीण थे और चित्र व मूर्तिकला की उनकी दक्षता व कार्य कुशलता देखते बनती थी। स्मृतिचित्र एवं दृश्यांकन तो वे चंद मिनटों में कहीं का भी कर दिखाते थे। उन्हें स्थान का चयन करने की आवश्यकता नहीं थी। वे चलती ट्रेन में रेखांकन किया करते थे, रुकने पर उस स्थान का दृश्य चित्र बना लेना उकनी कार्य-कुशलता की विशेषता रही, उन्होंने देश-विदेश के रेखांकन, व्यक्तियों के रेखांकन, विविध विषयात्मक रेखांकन बनाए।

वे यात्रा के समय भी अपने समक्ष व्यक्तियों के, स्टेशन पर भ्रमण कर रहे व्यक्तियों के, ठेले वालों के रेखाचित्र बनाते रहे, जो अमूल्य स्मरणीय धरोहर बन गये हैं। उनके द्वारा बनाए जलरंगीय चित्रों को देखकर लगता है कि यह तेलरंगीय पद्धति से बनाये गये हैं। उन्होंने देश-विदेश के दृश्यचित्र चित्रित किये, उनके दृश्यचित्रों में प्राचीन एवं भव्य इमारतें दृष्टिगोचर होती हैं। उनमें पारम्परिक शैली के प्रति गहरा अनुराग रहा।

मूर्तिकला में उनकी रुचि केवल संग्रह तक न होकर उन्हें ठीक करने से लेकर, बनाने तक भी रही। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद एवं प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू जब उज्जैन में कालिदास समारोह का उद्घाटन करने आए तो नगर की ओर से उन्हें दो मूर्ति फलक क्रमशः 1958एवं 59 में भेंट किये गये। वे डॉ. वाकणकरजी ने स्वयं बनाये थे।

डॉ. वाकणकर की चित्रांकन शैली एवं माध्यमगत विशेषताएँ विभिन्न प्रभाव तथा तकनीकि विशेषताएँ अद्भुत एवं स्मरणीय हैं। आकृति संयोजन में सादगी, ठेठ भारतीयता, कलात्मक मुखाकृति एवं देहयष्टि अनुपात एवं भावमुद्रा उनकी विशेषता रही है। कालिदास-साहित्य से अनुप्रेरित उनकी कलाकृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। उनमें पारम्परिक शैली के प्रति गहरा अनुराग रहा, यही कारण है कि कालिदास कला प्रदर्शनी और भारती कला भवन की प्रदर्शनियों में इस शैली का अलग विभाग रखकर पाश्चात्य प्रभावों की अतिग्रस्तता से उसे मुक्त रखा। कैमरा न होने से डॉ. वाकणकर ने प्राचीन गुफाओं के भित्ति चित्रों की स्वयं अनुकृतियाँ तैयार की। उन्होंने अपने शिष्यों को भी आकृति संयोजन में निपुण किया। दृश्य चित्रकला में भारती कला भवन के कलाकारों का अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर योगदान है।

वाकणकर जी को मालवा का ग्राम्य सौन्दर्य प्रभावशाली रंगयोजना के अनुकूल लगा इसलिए कला विषयक शोध ने गति पकड़

ली। उन्होंने आसपास के जीवन का अंकन, दृश्यांकन कर असीम भण्डार संगृहीत कर लिया। यूरोप व अमेरिका यात्रा के उपरांत उनके रेखाचित्रों में कुछ परिवर्तन आया, जो टेक्शचर के रूप में है। डॉ. वाकणकर ने प्लास्टर ऑफ पेरिस से भी मूर्तियाँ ढालीं। इस प्रकार उनका यह अनूठा व्यक्तित्व भावी कला पीढ़ी को प्रेरणादायी बना गया।

उन्होंने शैलचित्रों की अनुकृतियाँ कर कला-जगत् में एक ठोस कदम बढ़ाया। उन्होंने हजारों रेखांकन विदेश यात्राओं और देश भ्रमण के दौरान किये। दृश्य, व्यक्ति तथा वास्तु अंकन उनकी रेखाओं में अपनी अलग पहचान रखते हैं। देश-विदेश में प्रकाशित अंकित रेखांकन की गति-लयबद्धता देखते ही बनती है। उन्होंने सरस्वती शोध अभियान के दौरान सैकड़ों रेखांकन किये जो आप्टे इतिहास संकलन समिति, नई दिल्ली के संकलन में है।

प्रो. मदन भटनागर का कहना है- 'भारती कला भवन की स्थापना कर ऐतिहासिक नगरी उज्जैन को भारतीय कलाजगत् में विख्यात किया। आपके अनेक छात्र कलाजगत् में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।'

श्री कांति नागर के मतानुसार वि. श्री वाकणकर जी कर्मयोग के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण थे। 'ऐसा मुक्त आकाश ऊँचाई वाला विश्व विख्यात कला आचार्य, विद्वान कोई और देखा न सुना।' उनकी नजदीकी गरिमा देती थी। उनके चित्रों को देख एवं आँखों देखी संसार की खोज, उनके विचारों को सुनकर ज्ञानार्जन होता रहा। वे सभी लोगों के चहेते विद्वान थे।

डॉ. चंद्रकांत देवताले (शिखरस्थ कवि एवं प्रेमचंद सृजन पीठ के निदेशक) का कहना है, ''वाकणकरजी में प्रचुर बौद्धिक गरिमा थी, उनमें दुष्कर मानवीय संवेदना थी। वे चौकस और विवेकी

थे, उनकी निकटता बिना सिखाए इतना सिखा देती थी कि व्यक्ति ज्ञान, विचार, सृजन और जीवन की पवित्रता सीख लेता था।''

एक देव पुरुष इस भौतिक लोक को छोड़ गया, कौन ? वही जो भारतीय संस्कृति का पहरूआ थे, कला व पुरातत्व से एकरूप थे। सचमुच विष्णु जी ही थे। मानवाकृति होते हुए भी विराट पुरुष थे। उनकी सम्पदा लोक के लिए समर्पित हो गयी। चित्रकला व पुरातत्व का एक वातावरण तैयार कर दिया था, उनके घर जाने पर अब भी लगता है हम किसी अतीत को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। वे चित्रकला के आचार्य थे इसका कारण यह भी था कि वे मूलत: सर्जक थे- कविता, कहानी, कला के सृजन में भी समय मिलते ही डूब जाते थे। जाते-जाते भी अपना अंतिम रेखांकन छोड़ गये।

सिंगापुर जाते समय भी उन्होंने कलाकार विदुषी आवृति भटनागर को आश्वासन दिया था कि लौटकर आने पर तुम्हारे One Man Shop एकल प्रदर्शनी का उद्घाटन मैं करूँगा, पर विधि का विधान है- वह इच्छा पूर्ण न होने पर कलाकार विदुषी ने प्रथम एकल प्रदर्शनी से आज तक 26एकल प्रदर्शनियाँ पद्मश्री डॉ. वि.श्री. वाकणकरजी को समर्पित कर देश-विदेशों में आयोजित की। उन्हें भुलाया नहीं जा सकता, उनकी सभी इच्छाओं को पूर्ण करने, उन्हें व उनकी स्मृतियों को आगे बढ़ा रहे हैं, उनके शिष्य। उनके द्वारा निर्मित संग्रहालय, संस्थान, विद्यालय, सांस्कृतिक व कला संस्थाएँ जब तक कार्यरत हैं वे अमर रहेंगे।

उनके समूचे व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करना हो तो एक-एक पक्ष और विधा पर शोध कार्य करना होगा। उन्होंने चित्रकला से जीवन की शुरुआत की थी। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा उजागर की थी और फिर नीमच से जो निकले तो सिंगापुर जाकर अंतिम साँस ली। इस बीच संसार छान डाला और विविध क्षेत्रों में विपुल कार्य किया। निश्चिंत होकर बैठे भी नहीं कि कोई क़िस्सागोई हो जाती, बस चलते रहे और सुनते-सुनते कहते रहे। शिष्यों-मित्रों को अलग-अलग काम सौंपते रहे और कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। कहीं टिककर बैठे नहीं, वे तो बस अपनी धुन के पक्के थे। उनका कार्य जितना उज्जैन में समेटा गया है उससे कहीं अधिक देश-विदेश में बिखरा सहेजा होगा। इसलिए वे हजारों के दिलों में अपनी जगह बनाने में समर्थ हुए। कभी कोई मोह जागा नहीं क्योंकि उनमें ही सम्मोहन समाया हुआ था। वे समाज सेवा से भी अभिन्न रूप से जुड़े थे। वे अपने काम और नाम की रोशनाई की दीप्ति से प्रतिभाओं को आलोकित करते रहे। वह आलोक अब और लोगों को दीप्ति दे रहा है। उनकी स्मृति साल-दर-साल सर्जनात्मक-शोधात्मक-प्रकाशन रूपों से जुड़ती जा रही है।

- 14, रेखांकन, बरखेड़ी, भोपाल, मो. 9425014569

विष्णु भटनागर का पत्र कैलाशचन्द्र पाण्डेय के नाम

प्रिय बंधु पाण्डेय जी,

नमस्कार

विगत वर्षों की योजना रूप ले रही है, जिसकी आपने पुरजोर पहल की थी। अभिनन्दन ग्रंथ की तैयारी चल रही है अत: 'सर' से संबंधित संस्मरण दिसम्बर, 86के अंत तक लिखकर अवश्य भेज दीजिए। मंदसौर का कला-शिल्प वैभव विषयक लेख भी सचित्र अपेक्षित है। ग्रंथ या स्मारिका में प्रकाशित होगा। कुछ सामग्री ग्रंथ में और कुछ स्मारिका में देना है। स्मारिका का विज्ञापन पत्रक भी छपते ही भेजूंगा उसमें भी आपका सहयोग अपेक्षित है। फरवरी 87 के अंतिम सप्ताह में अभिनंदन, संगोष्ठी, प्रदर्शनी एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम होंगे उज्जैन में। बाकी जगहों के कार्यक्रम भी प्रकाश सोलेगाँवकर जी ने तय किये हैं और उनके अनुसार सर अभिनन्दन दौरे पर हैं। 1 जनवरी तक यहाँ आयेंगे। मैं ट्रस्ट के कार्य, कला भवन, कालिदास विद्यालय के अध्यापन कार्य और ग्रंथ सामग्री संचय में लगा हुआ हूँ। डॉ.सु.कु. आर्य जी संगोष्ठी प्रमाण देख रहे हैं। डॉ. जगदीश जोशी जी का पता भेजना। इरविन नायमेर आये थे रविवार को। उनसे भी लिखने को कहा है। करीब 100 लोगों को पत्र भेजे हैं। 90 लेख आ गये हैं। 'सर' से संबंधित फोटोग्राफ आपके पास हों, तो तुरंत भेजने का कष्ट करें ताकि उनका उपयोग किया जा सके।

विष्णु भटनागर

संस्मरण

इक साधे सब सधे

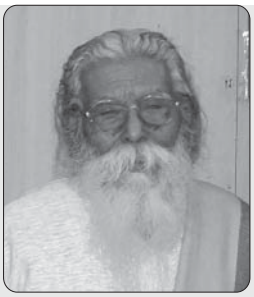

नवल जायसवाल

मैं नवल जायसवाल चार विधाओं में सृजनरत रहनेवाला एकमात्र कलाकार अपने को मानता हूँ किन्तु भोपाल आने पर ज्ञात हुआ कि महाकाल की नगरी उज्जैन में भी एक महान् विभूति कार्यरत है, उनका नाम है पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर। नाम तो सुना था पर आमना-सामना कभी हुआ नहीं। कुछ इस लम्बी मेरी यात्रा का उल्लेख अवश्य कर दूँ। यह सही है कि यात्राएँ बहुत कुछ सिखाती हैं, कुछ देती भी हैं और कुछ ले भी लेती हैं। कलाकार भी खाली हाथ आता है और खाली हाथ चला भी जाता है। जो रचता है, संजोता है यहीं इसी संसार में छोड़ जाता है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उस धरोहर का मान करें और उसकी आत्मा को आगे बढ़ाने का सतत प्रयत्न करें।

जिस जगह मेरी नियुक्ति थी वहाँ हर विधा के व्यक्ति, कलाकार आया करते थे। मैं कला कक्ष में था अत: एक वरिष्ठ व्यक्ति ने एक फार्म दिया और कहा कि इस प्रतियोगिता में चित्र भेजिए। इसके लिए मुझे महाकवि कालिदास का साहित्य पढ़ना पड़ा, मैं समर्थ भी हुआ और प्रतिवर्ष एक नया चित्र बना कर उज्जैन ले जाकर प्रस्तुत करने लगा। वापस लाने भी मैं ही स्वयं जाता था। यह आयोजन महाकवि कालिदास अकादमी आयोजित करती थी। इसी कारणवश उज्जैन में अन्य कलाकारों से परिचय भी होने लगा। इन यात्राओं की अवधि में एक बार आदरणीय पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर नाम के महान् विभूति धारणकर्ता के दर्शन हुए और मैं उन्हें चाहने लगा। उनके निवास ''भारती कला भवन'' जाने लगा। मेरा आकर्षण इसलिए भी हुआ कि वे पुरातत्ववेत्ता, कला आचार्य, मुद्राशास्त्री, साहित्यकार, अभिलेखविद्, भाषाविद्, इतिहासज्ञ, समाजसेवी थे।

एक दिन मैं वाकणकर जी के पास बैठा हुआ था। उन्होंने कहा कि वे मेरा सम्मान करना चाहते हैं। प्रदर्शनी भी लगेगी किन्तु चित्रकला वाली नहीं बल्कि छायाचित्रों की। मैं सहर्ष सहमत हो गया क्योंकि एक महान दुर्लभ अवसर था। कार्यक्रम अगले माह उसी भवन में हुआ जो कला भवन के नाम से जाना जाता था। इस बार मेरे साथ मेरी माँ थी। वे बहुत प्रसन्न हुईं। इसलिए नहीं कि एक महान् व्यक्ति सम्मान कर रहा है बल्कि आशीष दे रहा है। उस दिन वाकणकर जी ने मॉडलिक की विधा से एक व्यक्ति की मुखाकृति का अंकन किया। वातावरण पूरी तरह से सुगन्धमय रहा। सबके चेहरे पर मुस्कान थी। मेरी माँ गद्गद् थी, बेटा जो ..... इसी भवन में मेरी एक प्रदर्शनी और लग चुकी है। आयोजक भिन्न थे। ऐसे ही एक दिन और भारतीय कला भवन में वाकणकर जी के आसपास कुछ लोग बैठे हुए थे, मैं भी उनमें था। गुरु जी ने अचानक किसी कला के संदर्भ में माँ शारदे का नाम ले लिया। मेरी जिज्ञासा जागी। मैंने माँ शारदे के अन्य नामों के बारे में जानना चाहा। वाकणकर जी ने मेरे सामने एक डायरी रख दी और कहा:-

''इसमें पूरे नाम हैं नोट कर लो जो चाहो।''

मैंने अपनी डायरी निकाली और जिन नामों को नोट किया अपने पाठकों को बताना चाहूँगा। कृपया आप लोग भी नोट करें, वे हैं:-

''सरस्वती, वीणावादिनी, ज्ञान दा, वाग्देवी, वागीशा, वागीश्वरी, भारती, शारदा, विमला, कादम्बरी, कोयल, कोकिल, मैनापक्षा, वाणी, विद्या की देवी इत्यादि।'' इतना सब पर्याप्त नहीं है उनकी आत्मा का फैलाव सभी ओर है। एक दिन वे आये और पाँच

बड़ी पेन्टिंग लगभग 20''×30'' वाली। मेरे पास उस समय केवल चार पेन्टिंग ही थीं। उन्होंने कहा मैं भोपाल में ही हूँ कल तक पाँचवीं पेन्टिंग भी बन जाय। मैं शान्त था फिर भी पूछ लिया- ''कुछ विषय बता दीजिए- मैं तैयार करता हूँ।'' उन्होंने अपना अध्ययन और ज्ञान तत्काल ही व्यक्त कर दिया।'' सपाटे का उत्तर था- ''तंत्र मंत्र पर, कुछ योग भी हो सकता है।'' मैं अपने ऑफिस गया और विषय का उल्लेख कर पुस्तकें ले आया।

अध्ययन किया और एक पाँचवी पेन्टिंग दो दिन में तैयार कर उन्हें सौंप दिया। इतना सब कहने-लिखने के बाद मैं मान सकता हूँ कि मैं उनके बहुत समीप रहा हूँ। आज उन्हें आये 100 वर्ष बीत चुके हैं। वे यदि होते तो उन्हें प्रणाम करता। मेरा सम्मान उन तक पहुँचे।

बहुत कुछ कहा, बहुत कुछ रह गया। मैं उनकी तुलना किसी और से नहीं कर सकता क्योंकि वे अनूठे थे। इनकी सारी

विधाओं के ज्ञाता आकाश मार्ग से ही यात्रा करते रहे होंगे। धरती उनके लिए एक जन्मदात्री के समान है ? जिस आध्यात्मिक और परालौकिक व्यक्ति की नियति में चिन्तन जैसा तत्व आ जाये वह चुप नहीं बैठ सकता। उज्जैन का रहने वाला यह भी जानता है कि उसके दाह संस्कार के बाद उसकी अस्थियाँ सर्वप्रथम महाकाल के पूजन के लिए प्राथमिकता के अनुसार भेजी जाती हैं। वाकणकर जी सम्भव है इस नियम को जानते हों अत: निवास के लिए उज्जैन नगर ही चुना। उन्हें शायद यह भी ज्ञात हो कि इस क्रिया से मोक्ष मिलता है। वे जीवन की पराकाष्टा को पहचानते थे। वे जानते थे वाणी और अर्थ के सही ज्ञान के लिए वे जगत के माता-पिता पार्वती और शिव की वन्दना करते थे। उनका मानना था, कि शिव एवं पार्वती के वाणी और अर्थ के समान निरन्तर की भाँति मिले हुए हैं। उन्हें जीवन में स्पन्दन ने सदैव साथ दिया वे सूर्य से परे होकर रह नहीं सकते थे। वे सूर्य के प्रत्येक पक्ष को जानना चाहते थे इसलिए उनका मानना था कहाँ सूर्य का वंश और मेरी छोटी-सी मंदगति वाली बुद्धि के द्वारा महासागर को एक छोटी सी नाव

पर सवार होकर पार करना चाहता हूँ। दुर्लभों से बचते भी थे। कवि को भी चाहिए कि अपनी मन्दगति वाली मति प्रसारित न करें। वाकणकर जी के आदर्श भी मान्य किए जाने चाहिए।

मैं छोटी-सी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। यह अन्तर्मन की अप्रसारित ध्वनि है।

प्रेमन, बी-201 सर्वधर्म, कोलार रोड, भोपाल-462042

समवेत

महाराणा कुम्भा संगीत महोत्सव, उदयपुर, (राजस्थान)

राजस्थान दिवस के अवसर पर उदयपुर राजस्थान के शिल्पग्राम में 57 वाँ महाराणा कुम्भा संगीत समारोह सम्पन्न हुआ। 29 से 31 मार्च तक चले तीन दिवसीय इस भव्य कार्यक्रम का समापन जयपुर घराने की सुविख्यात नृत्यांगना कथकरत्न डॉ. शाम्भवी शुक्ला मिश्रा एवं समूह के शानदार कथक नृत्य प्रदर्शन से हुआ। सागर म.प्र. बुन्देलखण्ड की पर्यटन ब्रांड एम्बेसेडर डॉ. शाम्भवी शुक्ला ने अपने समूह नृत्य का शुभारंभ प्रभावपूर्ण शिव स्तुति से किया, जिसमें समुद्र मंथन गाथा एवं महादेव के विभिन्न स्वरूपों के भावपूर्ण नृत्य संयोजन से उन्होंने दर्शकों को रोमांचित किया। आपके एकल नृत्य में थाट की विलुप्त होती बारीकियों सहित इत्मिनान व ठहराव के साथ स्वनिर्मित बंदिशों में एवं चक्करों के विविध प्रकारों में नृत्योचित अनिवार्य स्फूर्ति एवं चपलता का अद्‌भुत सम्मिश्रण प्रदर्शित हुआ। सभागार को मंत्रमुग्ध और स्तब्ध करते हुए उन्होंने उपस्थित कला साधकों से बेहद प्रशंसा प्राप्त की। क्लिष्ट लयकारीयुक्त बंदिशों को विद्वानों ने सराहा। सुन्दर संगीत संयोजन गजल गायक एवं संगीतकार श्री बृजेश मिश्र द्वारा किया गया। राधा कृष्ण के सुन्दर वर्णन एवं पारंपरिक होली के समूह नृत्य ने समाँ बांध दर्शकों को भावविभोर किया। समारोह में पधारे विश्वविख्यात गायक द्वय पं. राजन-साजन मिश्र का सुमधुर व प्रभावपूर्ण गायन, पं. रोनू मजूमदार की सुरीली बाँसुरी, सुश्री वाणी माधव के ओडीसी समूह नृत्य, उस्ताद् असगर हुसैन का वायलिन वादन एवं सुश्री संगीता बंदोपाध्याय के शास्त्रीय गायन ने समारोह की प्रतिष्ठा अनुरूप प्रदर्शन कर संगीत उत्सव को और

ऊँचाई प्रदान की। अंत में सचिव डॉ. यशवंत कोठारी एवं संयोजक डॉ. प्रेम भंडारी ने स्मृति-चिन्ह एवं पुष्पगुच्छ से सभी कलाकारों का अभिनंदन किया।

रपट -डॉ. प्रेम भण्डारी

आलेख

शैलचित्र अन्वेषक : डॉ. वाकणकर

उमेश पाठक

दिव्य आत्माओं की कर्म चेतना कालजयी होती है। उनकी तपस्या अहर्निश होती है। उनका सामीप्य कृष्ण धातु को भी पारस की भाँति स्वर्ण बना देता है। उनकी लेखनी, तूलिका, वाणी या स्पर्श जहाँ हुआ उसका उद्धार हो जाता है। उसके पास होना साक्षात् ब्रह्म की अनुभूति करा देता है। वह आत्मा नि:सीम होती है। विश्व मानव उन्हें अनुभूतकर्ता है क्योंकि वह सत्य, तथ्य व सुन्दर से या विस्मृत हो चुके ज्ञान से कृष्ण की भाँति साक्षात्कर करता है। उसकी सौम्यता, शालीनता, वैदुष्य, सहृदयता मन की विशालता और सबसे बड़ कर कर्मयोग का भाव उस व्यक्ति की विशालता में समाहित रहता हैं। यह ईश्वरांश आपके जीवनकाल में आया हो तो आपके अन्तस का स्पर्श कर सुखद अनुभूति देता है। इतिहास और भारतीय संस्कृति कला के प्रज्ञा पुरुष, महान् चिन्तक-विचारक जिनका अति सादगी से भरा जीवन लेकिन प्रखर और गगनस्पर्शी वैचारिकी के धनी पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर जी का संदेह दर्शन करने का तो मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ लेकिन जिन दिनों प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करता था, तब इतिहास के नवीनतम ज्ञान के लिए उन्हें अवश्य पढ़ा था। यह तीन दशक पुराना काल खण्ड है।

मुझे कला एवं पुरातत्वजगत के शिखर पुरुष डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर जन्म शताब्दी 2019 के बारे में जानकारी उनके अन्तेवासी और प्रिय शिष्य मालवा और हाड़ौती की संगम भूमि निवासी आदरणीय अग्रज भ्रातकल्प, शिक्षाविद्, इतिहास, पुरातत्व के नदीष्ण विद्वान अनेक पत्रिकाओं के सम्पादक, लेखक, परामर्शदाता श्री ललित शर्मा झालावाड़ ने चलभाष यन्त्र वार्ता में मुझे दी।

मैंने सोचा कि वाकणकर जी के इस स्मृति यज्ञ में, मैं भी यजमान बनूँ। अपनी स्मृति मंजूषा को उलट-पलट किया। संस्कार भारती के कार्यक्रमों में विद्यार्थी जीवन में आना जाना रहता था। वहाँ जब संस्कार भारतीय के राष्ट्रीय स्तर के अधिकारियों का नाम आता तब डॉ. वाकणकर जी का नाम लिया जाता था। कलावर्ग और कला विषय के साथ जब माध्यमिक कक्षाओं को उत्तीर्ण किया, तब कला का संक्षिप्त इतिहास पढ़ा। वहाँ आदि मानव द्वारा पर्वतों की गुफाओं में उकेरी गईं कलाकृतियों के बारे में भी पढ़ा। तब भी डॉ. वाकणकर जी के नाम को पढ़ा लेकिन तब समझ सीमित थी।

महाविद्यालयी विद्या अध्ययन में आने के बाद मुझे पूज्य गुरुवर डॉ. नरेश चन्द्र बंसल का सामीप्य मिला जो साहित्य, पुरातत्व, कला, संस्कृति, इतिहास, लिपि विज्ञान आदि विषयों के प्रकाण्ड पंडित थे उनके द्वारा स्थापित संस्थान में पुरातत्व, पाण्डुलियाँ, सिक्के, कलात्मक अनेक भाँति की वस्तुएँ आदि को जानने-समझने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके द्वारा प्रेरित पुरातन को सहेजने में, मैं संलग्न हुआ। संस्थान (सूकरक्षेत्र शोध संस्थान) में आने वाली अनेक शोध पत्र-पत्रिकाओं में इतिहास, पुरातत्व, पाण्डुलिपि और कलाजगत पर विशेष ध्यान रखने पर अनेक जानकारियाँ' डॉ. वाकणकर जी' के शोध से प्राप्त होती थीं।

वे संसार को संस्कारित, श्रेष्ठ बनाने के लिए बिना किसी व्यवधान के लगे रहते थे। उनके दोनों करों में चार अस्त्र सदैव रहेते थे कलम, वर्ण तूलिका, प्रस्तरों का चीड़-फाड़ कर देने वाली कुदाली, मिट्टी खोदने का फावड़ा जो एक पुराविद् और कला मनस्वी व लेखक को आवश्यक है।

जिस व्यक्ति में धरती को पदयात्रा से मापने का हौसला होता है वह वामन भले ही हो, अन्तरिक्ष को भी नाप देता है। जब भारत तकनीक के लिए पश्चिम (यूरोप व अमेरिका) की ओर देखता है तब डॉ. वाकणकर जी वहाँ के शैलचित्रों के अध्यापन हेतु फ्रांस और अमेरिका में आमंत्रित किये जाते हैं। अपनी पुस्तक 'ए लास्ट पैराडाइज' आंग्ल भाषा में इसलिए सृजी कि संसार भारत की प्राचीनता को जानकर उसे नमन करे। उन्होंने मृतप्राय: आदि मानवीय संस्कृति को अपनी ज्ञान संजीवनी से पुर्नजीवित कर कई तीर्थ तुल्य स्थान रचे हैं। जनसामान्य के अज्ञान के कारण 'पुरासम्पदा' का जो क्षरण होता है उससे वे आहत होते थे। वे स्थानीय मान्यताओं के साथ विज्ञान को समाहित करने के पक्षकार थे क्योंकि व्यक्ति को पढ़-लिख कर जानना, समझना, सीखना चाहिए न कि अपने पूर्व ज्ञान को नकार देना चाहिए। डॉ. वाकणकर जी पराधीन भारत को स्वाधीन बनाने में क्रान्तिकारी के रूप में भी सक्रिय रहे थे। उन्होंने भारतीय इतिहास पुनर्लेखन का बीजारोपण भी किया था। षडयन्त्रकारियों ने भारत के इतिहास को विकृत और एकपक्षीय लिखा था। अनेक ऐतिहासिक तथ्य अनदेखे किये गये थे। भारतीय दृष्टि का इतिहास संस्कृति का स्वच्छ दर्पण है।

चूँकि मेरा जन्म स्थान सोरों (सूकरक्षेत्र) है जो चालुक्य (सोलंकी) राजाओं की उद्भव स्थली है। वाकणकर जी ने अनेक राजवंशों की खोज में चालुक्यों के धर्म दर्शन व सांस्कृतिक अवदान को भी उद्घाटित किया है। डॉ. वाकणकर जी ने भोज की सरस्वती ही नहीं, वेद की सरस्वती को भी स्थापित और प्रवाहमान दिखाया।

थारा पाँवा राखूँ पागड़ी, माथा रख जो हाथ।
पाछें थारे चल पड़ूँ, और काई न बात।।

शोध सहायक- सूकरक्षेत्र शोध संस्थान, मोहल्ला चौदहपौर सोरों सूकरक्षेत्र
जिला-कासगंज-207403 (उ.प्र.) मो.- 7599363063

महमूद दरवेश की कविता

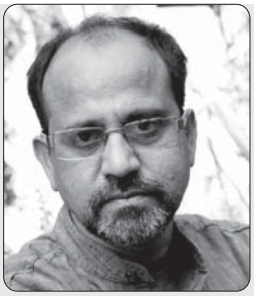

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

फिलिस्तीनी प्रतिरोधी साहत्यि के सुविख्यात कवि महमूद दरवेश का जन्म 1941 में हुआ। महमूद दरवेश बचपन से ही फिलिस्तीनियों पर इज़रायली अत्याचारों के मुखर विरोधी रहे। वर्ष 1970 में इन्हें विश्व प्रसिद्ध 'लोटस' पुरस्कार और 1983 में 'लेनिन शान्ति पुरस्कार' मिला।

विश्व की अनेक विदेशी भाषाओं में दरवेश की कविताओं के अनुवाद हो चुके हैं। 12 अगस्त 2008को अमरीका में हृदय-सर्जरी के दौरान देहान्त।

एक सैनिक सफेद कुमुदनी का स्वप्न देखता है

वह सफेद कुमुदनी का स्वप्न देखता है,
जैतून की कोई शाख,
शाम को खिले खिले उसके उरोज।
वह मुझसे बताता है
कि यह चिड़िया
और नींबू के फूलों का स्वप्न देखता है।
वह अपने स्वप्न की
बौद्धिक व्याख्या नहीं करता।
चीजें जैसी हैं
जैसी वह महसूस करता है।
वह मुझे बताता है
मातृभूमि उसके लिए
अपनी माँ के हाथों बनी कॉफी पीना है
रात घिरते ही घर लौटना है।

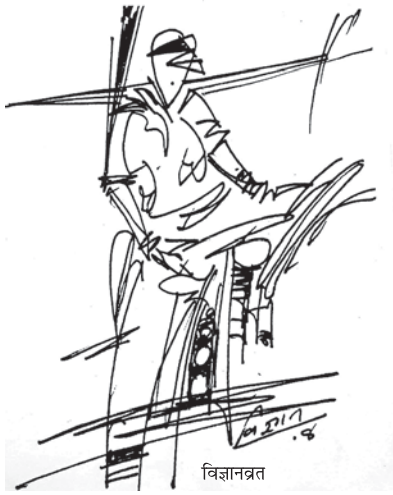

विज्ञानव्रत

मैंने उससे पूछा : और यह जमीन ?
मैं नहीं जानता, उसने कहा।
मैं इसे अपने रक्त में महसूस नहीं करता,
जैसा कि वे अपनी कविताओं में कहते हैं।
अचानक मैंने उसे देखा
जैसे कोई किराने की दुकान, सड़क
या अखबार देखता है।
मैंने उससे पूछा, क्या तुम इसे प्यार करते हो ?
मेरा प्रेम एक पिकनिक है, उसने कहा,
एक गिलास शराब, कोई प्रेम सम्बन्ध।
...क्या तुम इसके लिए मर सकते हो ?
...नहीं
इस जमीन के प्रति मेरी आत्मीयता
कोई कथा या आग उगलते भाषण से
अधिक नहीं।
उन्होंने मुझे इससे प्रेम करना सिखाया,
परन्तु मैंने इसे कभी
अपने दिल में महसूस नहीं किया।
मैंने कभी नहीं जाना
उसकी जड़े, शाखाएँ
या इसकी घास की गंध।
और इसके प्रेम के बारे में क्या ख़्याल है ?
क्या यह सूर्य और इच्छाओं की तरह जलता है ?
उसने सीधे मेरी तरफ देख और कहा :
मैं इसे अपनी बंदूक के साथ प्रेम करता हूँ।
खोदकर निकलता हूँ
अतीत के कचरे से उत्सव
और एक गूंगी-बहरी मूर्ति
जिसका काल और अर्थ नामालूम है।
उसने अपने विदा के वक्त के बारे में बताया,
फ्रंट पर जाते हुए
किस तरह उसकी माँ
खामोशी के साथ रोयी थी
और उसकी दर्द में डूबी आवाज ने
एक उम्मीद जगायी थी
कि कबूतरों का झुंड
युद्ध मंत्रालय से होकर गुजर जायेगा।
उसने एक सिगरेट सुलगायी।
फिर कहा,
वक्त के दलदल से दूर भागते हुए
मैंने सफेद कुमुदनी के फूलों का स्वप्न देखा,
जैतून की एक शाख,
एक चिड़िया
नींबू के झाड़ पर भुनसार से लिपटती हुई।

■

मधुकर अष्ठाना के गीत

मधुकर अष्ठाना

जन्म : 27 अक्टूबर, 1939
प्रमुख कृतियाँ :- सिकहर से भिनसहरा (भोजपुरी गीत एवं नवगीत संग्रह), गुलशन से बयाबाँ तक (ग़ज़ल संग्रह), न जाने क्या हुआ मन को (गीत-नवगीत संग्रह), शताधिक पत्र-पत्रिकाओं में गीत-नवगीत तथा अनेक आलेख प्रकाशित।
'विधायन', एस एस 108-109 सेक्टर-ई, एल.डी.ए. कालोनी कानपुर रोड, लखनऊ
मो.: 7355594937

वही नदी है, वही घाट है

वही नदी है
वही घाट है

सूख गयी है नदी
घाट भी
टूट गया है
और हमारा साथ
प्रीति का
छूट गया है

मिली समय की
कहाँ काट है

देवदास हम
हो न सके पर
टीस रहा मन

विज्ञानव्रत

जादूगर के
इंगित पर ही
नाच रहा तन

लुटा हृदय का
राजपाट है

बहेलिया ले गया
बंद पिंजरे में
मैना
बचा नहीं आहत तोते का
कोई डैना

हर आडम्बर
ठाठ-बाट है

गीत के तुम बोल हो मैं अंतरा हूँ

गीत के
तुम बोल हो
मैं अंतरा हूँ

तुम क्षितिज की
इंद्रधनुषी
अल्पना हो
तुम हृदय सिंचित
अनूठी
कल्पना हो

तुम शिखर हो
किंतु मैं
समतल धरा हूँ

बूँद हूँ मैं
और तुम
बादल घने हो
छत्र बनकर
शीश पर
मेरे तने हो
तुम लगे विद्युत
उसी की
मैं त्वरा हूँ

दर्प मेरे
गीत के
हो प्रखर तेवर
हो न पाया
बिन तुम्हारे
आत्मनिर्भर

तुम तपस्या
मैं तुम्हारा
अंगिरा हूँ

■

मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश' की कविताएँ

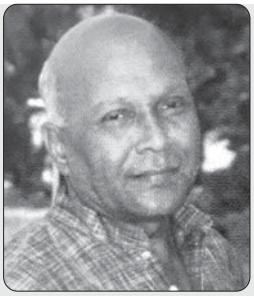

मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश'

जन्म : 28 नवम्बर, 1944
श्योपुर, मध्यप्रदेश
प्रमुख कृतियाँ :- कवि का पहला काव्य संग्रह 'थमे नहीं चरण' 1977 में प्रकाशित हुआ। दूसरा संग्रह 'ओ मेरे बच्चे' 2005 में प्रकाशित हुआ। आप श्रेष्ठ गद्य लेखक भी है व कई लेखों का स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशन हो चुका है।
- 9 विवेकानंद कालोनी, बलवंत नगर, ग्वालियर (म.प्र.)
फोन: 0751-2342308

आँख का पानी

बाहर निकलते समय
हम पहन लेते हैं पूरे वस्त्र
और ओढ़ लेते हैं
अपनी प्रकृति के अनुसार
एक खास व्यवहार की चादर।
तो...
जो हम होते हैं
वैसे दिखते नहीं
और हम जैसे हैं नहीं
वैसे दिखना चाहते हैं
दूसरे की निगाह में
अपने को जँचाने की कोशिश में
दिखावे की निरर्थकता
हमारे आसपास चिपक जाती है।
हाँ!

विज्ञानव्रत

व्यवहार की आँख का पानी
अवश्य देता है
उस घर का पता
जहाँ यह पानीदार
आदमी
कभी जन्मा होगा।

इच्छाओं का आकाश

हर एक को पता है
उसके हाथ
इतने ऊँचे तो हैं नहीं
कि वे
बढ़ कर
आकाश को छू लें
किन्तु ये चाहना तो
बल्लियों उछलती है।
हर एक का अपना रचाया
इच्छाओं का होता है
अलग-अलग आकाश
और होता है उसका
अपना एक क्षितिज भी।
सूरज की किरणें भर देती हैं
इच्छाओं के घर में
हर दिन नया उजाला
और आकाश को
छूने के प्रयत्न में
आग का एक गोला
समुद्र में समा जाता है।

अच्छी नीयत

सच कभी मरता नहीं
झूठ की बात
लंबी चलती नहीं।

अँधेरा
कितना भी स्याह हो
एक दीप की बाती
हर लेती है
अँधेरे का दर्प।
हवा मत दो
इस बात को
न मानो कि
सब कुछ बिगड़ गया है।

बिगड़े हुए को
सुधरने के प्रयत्न से जोड़ो
समस्याओं से
दो-चार तो होना जानो
अँधेरा क्यों होता है ?
अँधेरा कैसे बढ़ता है ?
सोचो!
और अपनी अच्छी नीयत से
दिया एक जलाओ तो सही।
तब भाग जायेगा झूठ जिन्दगी से
और अँधेरा चला जायेगा।

■

विज्ञान व्रत की ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

जन्म :
17 अगस्त, 1943 ग्राम तेड़ा, मेरठ (उ.प्र.)
प्रमुख कृतियाँ :-
बाहर धूप खड़ी है, चुप की आवाज़, जैसे कोई लौटेगा, तब तक हूँ, मैं जहाँ हूँ, लेकिन ग़ायब रौशनदान, याद आना चाहता हूँ (ग़जल संग्रह)। खिड़की भर आकाश (दोहा संग्रह)। नेपथ्यों में कोलाहल (नवगीत संग्रह), बालगीत संग्रह आदि प्रकाशित।
- मो.: 09810224371

(1)

मुझको समझा मेरे जैसा
वो भी ग़लती कर ही बैठा

उसका लहजा तौबा ! तौबा !!
झूठा क़िस्सा सच्चा लगता

महफ़िल-महफ़िल उसका चर्चा
आख़िर मेरा क़िस्सा निकला

मैं हर बार निशाने पर था
वो हर बार निशाना चूका

आख़िर मैं दानिस्ता डूबा
तब जाकर ये दरिया उतरा

(2)

जुगनू ही दीवाने निकले
अँधियारा झुठलाने निकले

ऊँचे लोग सयाने निकले
महलों में तहख़ाने निकले

वो तो सबकी ही ज़द में था
किसके ठीक निशाने निकले

आहों का अंदाज़ नया था
लेकिन ज़ख़्म पुराने निकले

जिनको पकड़ा हाथ समझकर
वो केवल दस्ताने निकले

(3)

कुछ नायाब ख़ज़ाने रख
ले मेरे अफ़साने रख

जिन का तू दीवाना हो
ऐसे कुछ दीवाने रख

आख़िर अपने घर में तो
अपने ठौर-ठिकाने रख

मुझ से मिलने-जुलने को
अपने पास बहाने रख

वरना गुम हो जाएगा
ख़ुद को ठीक-ठिकाने रख

(4)

मैं था तनहा एक तरफ़
और ज़माना एक तरफ़

तू जो मेरा हो जाता
मैं हो जाता एक तरफ़

अब तू मेरा हिस्सा बन
मिलना-जुलना एक तरफ़

यूँ मैं एक हक़ीक़त हूँ
मेरा सपना एक तरफ़

फिर उससे सौ बार मिला
पहला लमहा एक तरफ़

■

आलेख

नेमावर का ऐतिहासिक पर्यटन : डॉ. वाकणकर की दृष्टि में

नरेश कुमार पाठक

नेमावार मध्यप्रदेश के देवास जिले की खातेगाँव तहसील में स्थित है। वहाँ नर्मदा नदी के जल स्तर की चौड़ाई करीब 700 मीटर है। नेमावर हरदा रेल्वे स्टेशन से 22 कि.मी., इन्दौर से 130 कि.मी., भोपाल से (व्हाया नसरुल्लागंज) 150 कि.मी. (व्हाया आष्टा) 165 कि.मी., इटारसी जक्शन से 102 कि.मी., खण्डवा से 135 कि.मी. एवं खातेगाँव से 14 कि.मी. है।

ग्यारहवीं शती ईस्वी में अल्बरूनी ने भी नेमावर का उल्लेख किया है। यहाँ विक्रम संवत् 1223 (ई. सन् 1196) एवं विक्रम संवत् 1281 (ईस्वी सन् 1224) के दो अभिलेख मिले हैं, जिनमें यात्रियों का उल्लेख है। यह उत्तर से दक्षिण जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर अवस्थित होने के कारण महत्वपूर्ण नगर रहा है। नर्मदा के उत्तरी तट पर प्राप्त मध्य पाषाणकालीन औजार तथा लघु पाषाण शस्त्र प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर स्थित प्राचीन बस्ती से सतही सर्वेक्षण में पूर्व ऐतिहासिक काल के अवशेष प्राप्त हुये हैं। अवशेषों में कृष्ण लोहित मृदभाण्ड, उत्तरी काले चमकीले मृत पात्रावशेष (एन.बी.पी.) प्रमुख हैं।

परमार काल में नर्मदापुर के नाम से प्रमुख राजनीतिक तथा आर्थिक केन्द्र के रूप में विख्यात रहा। भोपाल से प्राप्त महा कुमार उदयवर्मन के वि.स. 1256(ईस्वी सन् 1199) के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि नर्मदा नदी के उत्तर का परमार राज्य विन्ध्य मण्डल कहलाता था। अभिलेख में लिखित नर्मदापुर को नेमावर से समीकृत किया गया है, जो विन्ध्य मण्डल का राजनीतिक केन्द्र था।

डॉ. वाकणकर के अनुसार नेमावर का प्राचीन नाम नाभिपट्टम रहा होगा जो कालान्तर में नाभिपुरम और बाद में नेमापुर हो गया क्योंकि 'वर' शब्द 'पुर' का ही अपभ्रंश है, जैसे वर्धमानपुर बाद में बदनावर हो गया। नर्मदापुर से भी यह कालान्तर में नर्मदावर एवं बाद में नेमावर हो गया होगा। धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र का सूचक सिद्धेश्वर मंदिर, अधूरा शिवमंदिर, गणेश मंदिर, पिंगलेश्वर मंदिर, विष्णु या सूर्य मंदिर, मातृ मंदिर, रेणुका मंदिर, दो छोटे मंदिर पार्श्वनाथ एवं आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, श्वेताम्बर मंदिर एवं नाभिकुण्ड है।

सिद्धेश्वर महादेव मंदिर– डॉ. वाकणकर के अनुसार नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर स्थित सिद्धेश्वर महादेव मंदिर लगभग 11वीं–शती ईस्वी का निर्मित भव्य देवालय भूमिज शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो उदयपुर के उदेश्वर मंदिर से साम्यता रखता है। पश्चिमाभिमुखी मंदिर में गर्भगृह अन्तराल एवं मण्डप की संरचना है। प्रतीत होता है कि अन्तराल एवं मण्डप का भाग परवर्ती काल में जोड़ा गया है। गर्भगृह में ग्रेनाइट का शिवलिंग एवं जलाधारी प्रतिष्ठित है। मूल मंदिर का वाह्य विन्यास बड़ा ही रोचक है। सप्तरथी योजना पर निर्मित मंदिर की जगती भाग में कलश व कुम्भ बने हुये हैं। सम्पूर्ण शिखर, लता बल्लरी द्वारा चार भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक चतुष्कोण में लघु शिखर आकृति (भूमि या अण्डक) की सात पंक्ति क्षेतिज तथा पाँच लम्बवत् पंक्तियां बनी हुई हैं। प्रवेश द्वार में ललाट बिम्ब पर ललितासन में गणेश का अंकन है। प्रवेश द्वार में सप्तद्वार शाखाएँ हैं, जिनमें शिव द्वारपाल तथा परिचारिकाओं का अंकन है। सिरदल के ऊपर अलंकृत पट्ट पर सप्त मातृकाओं का अंकन है। मण्डप का भाग परवर्ती काल में जोड़ा गया। मण्डप का वितान अलंकृत घण्टानुमा है, जिनमें सोलह नायिकाएँ विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण हैं, मण्डप स्तम्भों पर आधारित है जिसमें तीन ओर (उत्तर, दक्षिण एवं पश्चिमी) प्रवेश द्वार मुख मण्डप सहित भारवाही कीचकों का सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण किया गया है। डॉ. वाकणकर के अनुसार इल्तुतमिश ने इस मंदिर को अपने मालवा अभियान में अंशत: ध्वस्त किया होगा।

गणेश मंदिर– श्वेताम्बर जैन मंदिर के पूर्व में नर्मदा के तट पर छोटा–सा मंदिर है, इसमें वाम शुंडी गणेश है। यह चतुर्हस्त है। इसकी बनावट परमार काल जैसी लगती है। डॉ. वाकणकर के अनुसार यह प्रतिमा प्रारम्भिक परमार काल की है, इसमें कान कुछ बड़े हैं।

पिंगलेश्वर मंदिर– नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर प्राचीन मठ के समीप पिंगलेश्वर महादेव मंदिर है। इस मंदिर का गर्भगृह व सभा मण्डप स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके स्तम्भ अष्ट पहलू हैं व ऊपर कलात्मक शीर्ष है। गर्भगृह में शिवलिंग है। मंदिर में गणपति एवं चार नन्दी प्रतिष्ठित हैं। इसकी कलाशैली की प्रमुखता है ललाट बिम्ब पर गणेश का अंकन है। मंदिर का निर्माण मराठाकालीन ईंटों से बना है जिसमें दोनों ओर धर्मशालाएँ हैं। डॉ. वाकणकर का ऐसा अभिमत है कि पुन: निर्मित के समय जो स्वरूप प्रदान किया गया होगा जो आज देख रहे हैं, इससे इस बात में भी सन्देह नहीं रह जाता कि इसमें प्राचीन कीर्तिमुख स्तम्भ अन्य मंदिर के भाग थे और वर्तमान पिंगलेश्वर मंदिर के निर्माण के समय यहाँ प्रयुक्त किये गये। डॉ. तेजसिंह सैधव ने इसका निर्माण काल 15–वीं 16–वीं शती माना है।

विष्णु व सूर्य मंदिर– सिद्धेश्वर के मूल मंदिर से उत्तर दिशा में विशाल टेकरी है, जिसे ग्वाल टेकरी के नाम से जाना जाता है। पहाड़ी की सर्वोच्च चोटी पर स्थित सप्तरथी योजना पर निर्मित की गई है। जगती

में कुम्भ, कलश, जाड़्य कुम्भ एवं अन्तर पट्टिकाएँ सादी हैं। जंघा के मोड़ों में बन्धन अन्तरपट्टिकाओं के ऊपर ऊपरी जंघा भाग में विष्णु के 24 रूपों का अंकन है। प्रवेश द्वार की शाखाएँ अलंकृत हैं। ललाट बिम्ब पर ललितासन में चतुर्भुजी विष्णु का अंकन है। द्वार शाखा में चतुर्भुजी विष्णु द्वारपाल एवं बायीं ओर यमुना तथा दायीं ओर गंगा का अंकन है। अन्तराल का वितान विकसित कमलदल से अलंकृत है। गर्भगृह का अन्तभाग का वितान विकसित कमलदल से अलंकृत है। गर्भगृह का अन्तभाग चौकोर है, भारवाही कीचकों के नीचे मकर व्याल बने हुये हैं। वितान का ये अधूरा भाग अलंकृत है। इस मंदिर को ग्रामवासी सूर्य मंदिर कहते हैं, किन्तु कतिपय विद्वान एवं डॉ. वाकणकर ने इसे दशावतार मंदिर माना है।

मातृ मंदिर– नेमावर नगर के पूर्वी भाग में एक पुरानी टूटी–फूटी बस्ती है, इसे गढ़ी कहते हैं। इस गढ़ी में एक वटवृक्ष है, इसके पश्चिम में मातृ मंदिर है। यहाँ माता का स्तन वाला भाग विद्यमान रह गया है। इस भाग पर भी काफी सिन्दूर लगा है। मूल माता का क्या स्वरूप होगा यह कहना कठिन है। यहाँ आस–पास मंदिर के अलंकृत भाग के अवशेष बिखरे पड़े हैं, मातृ मंदिर के पास पंचमुखी दो शिव प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा जलाधारी में है, दूसरी एक चौखटे बेस पर है। यहाँ एक दक्षिण मुखी गणेश है। परमार काल के अन्य शिल्पखण्डों में गज शार्दूल विष्णु आदि हैं। यहाँ प्रवेश द्वार के समक्ष जैन प्रभावली के कुछ भाग पड़े हैं, दो स्त्री प्रतिमाएँ एक चँवरधारिणी और एक अन्य। इस प्रकार यह द्वार भाग का बचा हुआ हिस्सा है। डॉ. वाकणकर ने इस स्थान पर पूर्वाभिमुख एकमात्र वहुशिविर का मंदिर होने की सम्भावना व्यक्त की है।

रेणुका मंदिर– यहाँ पर एक पहाड़ी मंदिर की पश्चिमी दीवार में परमार कालीन उमा–महेश्वर प्रतिमा है। इसका द्वार अखण्ड है। ललाट बिम्ब में गणपति है। सामने स्तम्भों पर कीचक लगे हैं। मध्य में नृत्यरत प्रतिमाएँ हैं। इसके ऊपर आम्रपुष्प युक्त घट है। इस प्रकार रेणुका देवालय का यह द्वार अत्यंत सुन्दर है। मंदिर में कुछ प्रतिमाएँ हैं, जिनमें नृत्य करते हुये भैरव हैं, जिनका एक हाथ विस्मय दूसरे में डमरू, तीसरे में ढाल, चौथा अस्पष्ट है। इसके पास चंवर धारिणी है तथा उसके पास नग्न भरव प्रतिमा है। भैरव के हाथ में खड़ग, डमरू, ढाल तथा एक हाथ भग्न है। इसके पास एक और प्रतिमा है, जो अत्यन्त भग्न होने से इसके आयुध स्पष्ट नहीं हैं। प्रवेश द्वार के ऊपर सप्त मात्काओं का अंकन है। पास में नर्तकियों का समूह है। इस प्रकार परमारकालीन अवशेषों से यह मंदिर पुन: निर्मित किया गया था। इसके द्वार मात्र मूल अवस्था में दिखाई देता है। डॉ. वाकणकर के अनुसार यह मंदिर भगवान परशुराम की माँ रेणुका को समर्पित है। नेमावर से 5 कि.मी. दूरी पर दैयत में परशुराम ने सहस्त्राबाहु का वध के पश्चात् पितृ तर्पण या पितृ ऋण से मुक्ति पाने के लिए पितृयज्ञ या पिण्डदान किया था।

नाभि कुण्ड– सिद्धेश्वर मंदिर के सामने नर्मदा नदी के मध्य एक चट्टान में एक प्राकृतिक कुण्ड है। नाभि अर्थात शरीर का मध्यभाग। यहाँ पर नाभि स्थल नर्मदा नदी का मध्य भाग है। यहाँ से नर्मदा जितनी पूर्व में अमरकंटक तक है, उतनी उसकी लम्बाई पश्चिम में उसके समुद्र संगम तक है। नर्मदा कुल 829 मील लम्बाई में नेमावर मध्य में है। नेमावर से सागर संगम की दूरी 415 मील है। इस प्रकर यहाँ पर स्थित नाभि स्थल अपने नाम के अनुरूप नर्मदा का मध्य भाग है– यह प्रमाणित तथ्य है।

डॉ. वाकणकर के अनुसार नर्मदा की परिक्रमा करने वाले जब नर्मदा के उत्तरी तट पर नेमावर में एवं दक्षिण तट पर हण्डिया पहुँचते हैं, तो वे यह मानते हैं कि उनकी नर्मदा के नाभि स्थल तक की आधी यात्रा पूर्ण हो चुकी है। वे लोग नाव से यहाँ पूजा –अर्चना करने आते हैं।

नाभि स्थल अथवा नाभिकुण्ड नर्मदा के उत्तरी किनारे पर स्थित। सिद्धेश्वर महादेव मंदिर एवं दक्षिण किनारे पर स्थित ऋद्धेश्वर महादेव मंदिर दोनों के ठीक मध्य में स्थित है। यहाँ पर प्राकृतिक अर्धपट्ट पर शिवलिंग तथा सूर्य, विष्णु, गणेश आदि की प्रतिमाएँ हैं। पूर्व का अग्रभाग कोणात्मक है। नाभि–प्राकृतिक रूप से 80 से.मी. गहरी है। नाभि का व्यास 40 से.मी. है। नाभि के मध्य में शिवलिंग है। नाभि चारों ओर की दीवारों के मध्य में वर्गाकार है– दीवारों में प्रतिमाएँ हैं तथा इतनी ही पूर्व–पश्चिम में है। पश्चिम की ओर एक मीटर चौड़ा खुला द्वार है। चारों ओर की दीवारें अधिक ऊँची नहीं है।

डॉ. वि. श्रीधर वाकणकर द्वारा नेमावर की अनेक यात्राएँ की डॉ. तेजसिंह सैंधव का कथन है कि वे शोध कार्य के समय (डॉ. वाकणकर) नेमावर आये थे। मैं 1979 से 1981 तक इन्दौर संग्रहालय में पदस्थ था, उस समय डॉ. वाकणकर जी के साथ नेमावर आया था। उनकी दृष्टि में यह मालवा का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं पर्यटन स्थल है। वे इसे ऐतिहासिक धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से विकसित कराना चाहते थे। यह स्थल पवित्र नदी नर्मदा के किनारे होने के कारण देश के कोने–कोने से परिक्रमा करने वाले नाभिकुण्ड दर्शनार्थ आते हैं। प्रत्येक अमावस को श्रद्धालु दर्शक एवं पर्यटक यहाँ आते हैं, सोमवती अमावस को यहाँ विशाल मेल लगता है, इस दिन लाखों श्रृद्धालु नर्मदा स्नान कर यहाँ ऐतिहासिक पर्यटन स्थलों को देखने आते हैं।

पर्यटकों को रुकने हेतु मध्य प्रदेश पर्यटन विकास निगम का विश्रामगृह एवं सामान्य यात्रियों हेतु यात्री निवास का निर्माण किया जाना चाहिए। पर्यटकों को जानकारी हेतु सूचना केन्द्र एवं प्राइवेट गाइड हेतु लाईसेन्स जारी किया जाना चाहिए। ये सभी कार्य यदि हम पूर्ण कर सकें तो डॉ. वाकणकर ने नेमावर के विकास की जो परिकल्पना की वह पूर्ण हो सकेगी।

पता– म.नं. 24, रामानुजनगर, रामवाटिका के पीछे, गोविन्दपुरी के सामने, सीटी सेन्टर पो.ओ. ग्वालियर (म.प्र.), मोबा. नं. 82239–15111

■

संस्मरण

डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर- एक अद्‌भुत व्यक्तित्व

राजेन्द्र नागदेव

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। भारत के प्रागैतिहासिक शैलचित्रों को विश्व-पटल पर स्थापित करने वाले पद्‌मश्री वाकणकरजी के सम्पर्क में जो भी व्यक्ति आता वह उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर पाता था।

मैं उनकी कला संस्था में दीर्घकाल तक रहा। 1961 तक उनके मार्गदर्शन में उस संस्था में कला शिक्षा ग्रहण करता रहा। तदनंतर स्थापत्य की शिक्षा हेतु मुम्बई चला गया। किंतु सर के साथ संपर्क सदैव बना रहा। मेरे अग्रज सच्चिदाजी उनके प्रथम शिष्य थे। हमारे परिवार के साथ उनके लगभग पारिवारिक संबंध थे। दीर्घकाल तक उनके सम्पर्क में रहने के कारण मुझे उन्हें एक व्यक्ति के रूप में जानने, समझने का अच्छा अवसर मिला।

सर अपने शिष्यों में किसी भी क्षेत्र में प्रतिभा का आभास पाते तो उसे आगे बढ़ने के लिए खूब प्रोत्साहित करते थे। वह क्षेत्र संगीत, विज्ञान, व्यक्तिव कुछ भी हो सकता था। मुझे याद है वहाँ दो-तीन विद्यार्थी थे जो विज्ञान के छोटे-मोटे प्रयोग अपने सीमित साधनों से किया करते थे। पचास के दशक में अमेरिका और रूस में राकेट छोड़े जा रहे थे। कला भवन का एक विद्यार्थी राकेट बना कर उड़ाने की कोशिश किया करता था। सर उसे खूब प्रोत्साहित किया करते थे। उसमें वे शायद भावी वैज्ञानिक की छवि देख रहे थे। मेरी साहित्य में रुचि थी। सन् 1956तक मेरी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं। कम उम्र में ही सर ने मुझे कलाभवन की हस्तलिखित पत्रिका के सम्पादन का दायित्व सौंप दिया। तब मैं सातवीं कक्षा का ही विद्यार्थी था। मैंने तीन वर्ष तक उनके मार्गदर्शन में सम्पादन कार्य किया। मैं जब उज्जैन के ''आदर्श विद्यालय'' में पढ़ रहा था तो मैं और छोटा भाई नरेन्द्र अक्सर वहाँ भाषण, वाद विवाद आदि प्रतियोगिताओं में भाग लिया करते थे। सर को इससे बहुत प्रसन्नता होती थी। वे हमारा उचित मार्गदर्शन किया करते थे। कभी-कभी हमको बिना बताए चुपचाप विद्यालय में आकर श्रोताओं के बीच बैठ जाते। जब हमें यह पता चलता तो अपार खुशी होती थी।

चलते रहो... चलते रहो यह उनके जीवन का मूलमंत्र था। अपने शिष्यों को वे सदा खूब काम करने के लिए कहते थे। स्वयं उनका कर्मठ जीवन शिष्यों के समक्ष आदर्श था। गुफाओं की खोज में जब निकलते थे तो जंगलों, पहाड़ों में भटकते हुए कई दिन हो जाते थे। खाने-पीने का प्रबंध वे इस तरह करते कि अपने साथ नमक, मिर्च, सूजी, आलू जैसी चीजें रख लेते थे। पत्थरों का चूल्हा बनाते। आलू उबाल कर खाते थे। गरम पानी में सूजी और नमक-मिर्च डाल कर 'उपमा' जैसा कोई खाद्य पदार्थ बनाते थे जिसे मराठी में 'उकड़पेण्डी' कहा जाता है। पानी के लिए झरने और नदियाँ थीं ही। साथ में चने-मुरमुरे भी रख लेते थे। शोध का काम किसी भी स्थिति में रुकना नहीं चाहिए यह उनका मूल उद्‌देश्य था। काम की ऐसी गहरी धुन ही थी कि वे इतने महत्वपूर्ण अनुसंधान कर सके। जंगलों, गुफाओं से लाई गई सामग्री का कई दिनों तक कला भवन के हाल में बिछी दरी पर बैठ कर गहन अध्ययन करते थे, लेख लिखना भी दरी पर ही होता था। टेबल-कुर्सी नहीं थी।

वाकणकरजी का स्वभाव अत्यंत नम्र था। उनसे संवाद करते हुए कभी यह प्रतीत नहीं होता था कि हम इतनी बड़ी हस्ती से बात कर रहे हैं। उनमें बच्चे, बड़े किसी के भी साथ तुरंत घुलमिल जाने का अद्‌भुत गुण था। हमारे परिवार के साथ तो उनके बहुत विशिष्ट संबंध थे। हम जब दिल्ली में रहा करते थे और सर का दिल्ली आगमन होता था तो अक्सर हमारे घर

ही रुका करते थे। जब वे पद्मश्री सम्मान लेने दिल्ली आए थे तब भी आदरणीया वहिणी के साथ हमारे घर ही रुके थे। एक अन्य अवसर पर जब वे आए थे तब हमारा बेटा बहुत छोटा था। वे उसे गोद में लेकर खिलाते और रात को लोरियाँ गाकर सुलाते थे। एक दिन उन्होंने मेरी पत्नी शीला को कहा आज तुम रसोई में मत आओ, आज खाना मैं बनाऊँगा। उस दिन भोजन उन्होंने बनाया। इतना अपनापन! आश्चर्य होता है।

सर के व्यक्तित्व की यह सरलता उनकी कला संस्था 'भारती कला भवन' में भी प्रतिबिंबित हुई। वहाँ कड़े नियम नहीं थे, प्रतिबंध नहीं थे। बहुत सहज वातावरण था। ऐसा वातावरण जो कलाकार को मुक्त सृजन के लिए अनिवार्य होता है। कक्षाओं के लिए प्रात: और संध्या समय के कुछ घण्टे निश्चित थे। किंतु ऐसा नहीं था कि उस कालावधि के बाहर कोई विद्यर्थी वहाँ नहीं जा सकता था। कलाभवन एक तिमंजिला भवन था। प्रथम तल पर किराएदार थे। द्वितीय तल पर वाकणकर परिवार रहता था। परिवार में सर और वहिणी के अलावा सर के पूज्य पिताजी, माताजी व दो बहनें रहा करती थीं। कलाभवन तृतीय तल पर था। वहाँ खुला प्रांगण और एक हाल था। वहीं कक्षाएँ लगा करती थीं। वहीं पुरातात्विक संग्रहालय था, मूर्तियाँ थी, सिक्के थे। कला संबंधी पुस्तकें थीं अल्मारियों में। विद्यार्थियों और कुछ प्रसिद्ध चित्रकारों की कृतियाँ थीं। अजंता की अनुकृति वाले भित्तिचित्र थे। विशेष यह कि कलाभवन हर समय विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध था। दूसरी मंजिल पर एक दीवार पर कलाभवन की चाभी लटकी रहती थी। जब भी किसी विद्यार्थी की काम करने की इच्छा होती वह चाबी लेता था। ताला खोल कर जब तक मन हो काम करता था फिर चाबी

वहीं लटका कर चला जाता था। बहुमूल्य कला संबंधी पुस्तकें और पुरातात्विक सामग्री वहाँ थी किंतु चोरी नहीं होगी इसका सर को विश्वास था। हम कभी-कभी रात के ग्यारह बजे तक भी वहाँ काम करते थे।

सर कला में भारतीय और पाश्चात्य दोनों शैलियों को बराबर महत्व देते थे। किसी विशिष्ट शैली की ओर उनका झुकाव नहीं था। अपने शिष्यों को उन्होंने केवल कला के मूल तत्वों से परिचित कराया फिर उन्हें स्वतंत्रता दी कि वे जिस भी शैली को अपनाना चाहें अपनाएँ। इसी कारण कलाभवन से निकले चित्रकारों के काम में भिन्न-शैलियाँ दिखाई देती हैं, भारतीय आकृतिमूलक शैली से लेकर आधुनिक अमूर्त शैली तक। पचास और साठ के दशक में जब उनके निर्देशन में उज्जैन में कालिदास प्रदर्शनियाँ हुआ करती थीं तो कालिदास साहित्य पर भी आधुनिक अमूर्त शैली की कलाकृतियाँ भी आया करती थीं। यह सर की ही विस्तीर्ण सोच का परिणाम था।

जहाँ तक उनकी विचारधारा की बात है, अन्य और विपरीत विचारधाराओं को मानने वाली हस्तियों को उन्होंने समय-समय पर कलाभवन में सादर आमंत्रित किया। ख्वाज़ा अहमद अब्बास को वे कलाभवन लाए जो कट्टर साम्यवादी थे। इसी तरह जब श्री प्रकाशचंद सेठी एक बार रूस यात्रा से वापस आए तो उनको व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किया। ऐसे समय वे अपनी विचारधारा को अलग रख देते थे। उनके मन में मात्र कला के विकास का भाव होता था।

डी के-2, 166/18, दानिशकुंज, कोलार रोड, भोपाल-462042
मोबा. 8989569036

वरिष्ठ कवि लेखक आलोचक राधेलाल बिजधावने का कविता संग्रह

दरख्त पर चिड़िया

प्रकाशित हुआ है

प्रकाशक - प्रेरणा पब्लिकेशन

देशबन्धु भवन प्रथम तल 26-बी प्रेस कॉम्पलेक्स एम.पी.नगर जोन-1
भोपाल - 462011 फोन नं- 0755-4940788
ई-मेल-prernapublicationbpl@gmail.com

पृष्ठ : 180
मूल्य : 190/-

संस्मरण

आत्मीयता का विस्तार

स्मिता नागदेव

मेरे बचपन में जब भी मेरे पिताजी बताते कि सर (प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डॉ. वाकणकर) घर आयेंगे और रात यहीं रुकेंगे तो बेसब्री से उनका इंतजार होता था। वो अक्सर हमारे पुराने घर (रविशंकर नगर, भोपाल) के आसपास की पहाड़ियों पर प्रागैतिहासिक औज़ार इत्यादि ढूँढ़ने आते थे और अक्सर तो बिना बताये ही अचानक घर आ जाते थे। रात में जब वो थके-मांदे घर लौटते तो उनके सोने के लिए घर के ड्राईंग रूम में एक फोल्डिंग पलंग बिछाया जाता था। उनके उस पर लेटते ही हम उस पलंग के इर्द-गिर्द बैठ जाते और कहते सर कहानी सुनाओं, सोने के पहले। वो शिवाजी और कई महान् व्यक्तियों की बहुत ही प्रेरक कहानियाँ सुनाते थे। बहुत थके होने के कारण वो कहानी सुनाते-सुनाते ही बीच में सो जाते, खर्राटे भरने लगते तो हम उन्हें हिला-हिलाकर जगाते कि सर कहानी खत्म नहीं हुई अभी। आज अब इस बात को याद करके बहुत दु:ख होता है कि वो कितने थके होते थे और हम उन्हें सोने भी नहीं देते थे। हमें एहसास ही नहीं था कि हमें कितने महान् व्यक्ति का सानिध्य प्राप्त था।

एक कहानी बहुत ही रोचक जो वो सुनाते थे वो आज भी मुझे याद है वो दो व्यक्तियों की कहानी कैसे धूर्त दूसरे साधारण व्यक्ति को बेवकूफ बनाता है वह बताते हैं कि सत्तू बहुत देर में बनता है जबकि खिचड़ी तुरंत। क्योंकि वह दूसरे व्यक्ति का सत्तू हड़प कर खाना चाहता था।

उनका 'धम्मक लाडू' भी याद है जो वो घूंसा बनाकर हमारी पीठ पर मारते थे। मेरे पिता श्री सच्चिदा पर उनका बड़ा ही प्रेम था। उन्हें कभी 'सच्चिदानंद' या फिर 'सच्चिदा' कहकर बड़े ही आत्मीयता से बुलाते थे। उनके नाम का इतना सही उच्चारण शायद सिर्फ वो ही करते थे।

सर की छोटी बहन नलू आत्या का बताया किस्सा याद आ रहा है कि मेरे पिताजी जब सर के उज्जैन स्थित कला भवन में जाते थे तो अक्सर रात-रात भर वहीं रुककर पेंटिंग्स बनाते थे। शायद 60 के दशक की बात है, उस वक्त कला भवन में किसी ने एक नयी दरी उपहार स्वरूप दी थी। मेरे पिताजी ने ठंड से बचने के लिये अंगीठी जलायी और पेंटिंग करते-करते भूल गये कि अंगीठी से दरी जल गयी है। जब सर ने अगले दिन वो जली दरी देखी तो गुस्से में सबसे पूछा कि किसने जलायी है, जैसे ही नलू ताई (जैसा मेरे पिताजी उन्हें बुलाते थे) ने बताया कि 'सच्चिदा ने' वैसे ही सर की आवाज नरम पड़ गयी और बोले ठीक है, कोई बात नहीं। आखिर 'सच्चिदा' उनके परम व पहले शिष्य जो थे उन्हें अपना दत्तक पुत्र बनाया था सर ने।

मेरे बचपन में मेरे सितार बजाने का उन्हें (वाकणकर सर को) बहुत कौतुक था। वो सभी को बताते थे कि 'सच्चिदा' की बेटी बहुत छोटी उमर में बहुत अच्छा सितार बजाती है पर मुझे अक्सर कहते थे खूब रियाज करो, तुम अच्छे से रियाज नहीं करती। किसी के लिये 6घंटे की नींद काफी होती है बाकी सारा समय काम करते रहना चाहिये। सन् 1987 में जब सर भोपाल आये (शायद अक्टू-नवं. माह में) तब मेरे पिताजी ने तय किया कि सर के साथ हम सब लोग (सर की बहन सुधा ताई, उनके बच्चे, आर्टिस्ट सुरेश चौधरी का परिवार और कुछ और लोगों सहित) भीमबैठका गये। मेरे पिताजी बहुत ही दूरदर्शी थे उन्होंने सर की खोज सर के द्वारा बताते हुये का वीडियो बनवाने का तय किया और एक फोटोग्राफर को बुक किया। सर ने कहा कि बबली (मेरा घर का नाम) वहाँ सितार भी बजायेगी, सो मेरा सितार भी साथ हो लिया। Auditorium Rock में एक करीब 10 फीट ऊँची चट्टान थी जो मंच की तरह दिखती थी उस पर सर ने मुझे चढ़वाकर वहाँ सितार बजवाया था। मैं बहुत डर भी रही थी कि नीचे गिर ना जाऊँ पर सर की आज्ञा थी, सो बजाना तो था ही बहुत ही अलग, रोमांचकारी अनुभव था वह। उस चट्टान पर बैठकर बजाना और सामने सर का बैठकर सुनना। सर ने उस यात्रा में पूरा हम सब लोगों को बताया था कि कैसे वो भीमबैटका आये थे? कैसे खोज की थी? इत्यादि। मैं 14 साल की थी तब।

ए-8, कस्तूरबा नगर, भोपाल (म.प्र.)-462024, मो. 9425025924

आलेख

पुरातत्ववेत्ता डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर की एक स्मृति

डॉ. बी.एम. रेड्डी

अपने अध्ययन के दौरान विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में मुझे स्व. डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर साहब से ज्ञानार्जन का लाभ मिला। अपने अध्ययन काल में गुरुवर्य के सान्निध्य में जो कुछ ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ उसे लिपिबद्ध करना मेरे लिए यद्यपि बहुत कठिन कार्य है। वह तब और अधिक कठिन जान पड़ता है जबकि उसे हिन्दी में लिखा हो। परन्तु गुरुदेव की कृपा से यह सब संभव होगा, ऐसा मानकर मैं अपनी कलम से लेख को प्रारंभ करता हूँ।

गुरुजी का घर ''भारती कला भवन'' के नाम से प्रख्यात होकर उज्जैन के प्रख्यात फ्रीगंज टावर के अत्यन्त समीप था। गुरु जी के घर पर विद्यार्थी, प्रचारक, पत्रकार, पुरावेत्ता, चित्रकार, साहित्यकार आदि प्रत्येक विधा के लोग शिरकत करते रहते थे। जो भी आता वह गुरुदेव से कुछ न कुछ लेकर ही जाता था। गुरुजी पुरातत्व की अनेक विधाओं यथा- प्रतिमाशास्त्र, खामल, लिपि विज्ञान, अभिलेख, मुद्राशास्त्र, उत्खनन, मूर्तिकला, चित्रकला आदि में मिष्णात थे। अध्ययन के दरवाजे उन्होंने कभी बन्द नहीं किये। खाने-पीने से लेकर पठन-लेखन तक उनका कुछ न कुछ अध्ययन, लेखन चिंतन चलता ही रहता था। भारतीय शैलचित्रों के वे प्रारंभिक शोधकर्ता थे। उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों की घटनाओं का अध्ययन कर उन्हें भारतीय दृष्टिकोण से अध्ययन किया। भारतीय शैलचित्रों के काल निर्धारण व उनके वर्गीकरण का अध्ययन करने वाले प्रारंभिक विद्वान थे। यद्यपि उनका अध्ययन गहन था परन्तु उनके व्यवहार से ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता था। वे विद्वानों से लेकर बच्चों तक को इतिहास की जानकारी देते। गहन से गहन विषय को साधारण बोलचाल की भाषा में समझा देते थे। अच्छे से अच्छा जिज्ञासु उनकी इस प्रवृत्ति से सन्तुष्ट होकर ही लौटता था। अहिन्दी भाषी विद्यार्थी के रूप में मुझे उनके पास लगभग 9 वर्षों तक अध्ययन करने का अवसर मिला। गुरुवर्य के पास अपनी समझ को अध्ययन के माध्यम से विकसित करने का जो सौभाग्य मुझे इन 9 वर्षों के दौरान मिला, वही मेरे वर्तमान जीवन की सच्ची धरोहर है। मैं ईश्वर को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ कि मुझे ऐसे गुरु ज्ञानी पुरावेत्ता के श्री चरणों में बैठकर अध्ययन करने का सौभाग्य मिला।

उज्जैन, मालवा का हृदय स्थल है। डॉ. वाकणकर ने मालवा की ताम्राश्मीय सभ्यता की खोज में कोई दर्जन भर पुरास्थलों पर उत्खनन कार्य सम्पन्न किये। इन स्थलों में से मुझे दंगबाड़ा तथा रुनीजा की प्राचीन बस्तियों के उत्खनन के दौरान उनके साथ कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह मेरा सौभाग्य था कि गांधी सागर क्षेत्र के शैलचित्रों के अध्ययन के दौरान से लेकर नरसिंहगढ़ क्षेत्र के शैलचित्रों के अध्ययन की उनकी यात्राओं में मुझे सहभागी होने का अवसर मिला। इन यात्राओं के दौरान मैंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपने ज्ञान आधार की अभिवृद्धि की, जिसकी स्मृतियाँ अब भी शेष हैं।

नौ वर्षों के अध्ययन काल में जब भी कभी आर्थिक संकट आया गुरुवर्य ने मुझे आर्थिक संबल प्रदान किया। उन दिनों विभाग को इतनी अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती थी फिर भी गुरुदेव कभी शासकीय मद से, तो कभी अपनी जेब से मुझे धन प्रदान कर आर्थिक मदद करते थे। सर की आर्थिक मदद से मैंने भीमबैठका के उत्खनन से प्राप्त माइक्रोलिथल का अध्ययन पूर्ण किया। मैं इस आर्थिक मदद को आजीवन विस्मृत न कर सकूँगा। डॉ. वाकणकर का यह स्वभाव ही था कि वे अपने शिष्यों की तन, मन, धन से मदद करते थे। डॉ. वाकरणकर की संघ में गहरी निष्ठा थी, परन्तु उन्होंने कभी इसे अपने विद्यार्थियों पर नहीं धोपा। 'पद्मश्री' जैसी उपाधि प्राप्त करने के बाद भी उनमें लेशमात्र का अहंकार न था।

मैं मूलत: आन्ध्रप्रदेश (सम्प्रति तेलंगाना) का अहिन्दीभाषी छात्र था परन्तु उन्होंने मुझे ''मालवा में सातवात्य सिक्कों का अध्ययन'' करके अपनी शोध उपाधि हेतु पंजीयन होने के लिए प्रेरित किया। इतना ही नहीं उन्होंने अपना व्यक्तिगत संग्रह मुझे अध्ययन के लिए प्रदान कर दिया ताकि मैं उनमें से शताब्दी युगीन सिक्कों को अलग कर अपना शोधकार्य पूर्ण कर सकूँ। अपने विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। मुद्राशास्त्र तथा शैलचित्रों के क्षेत्र में जो कुछ मैंने डॉ. वाकणकर जी से अपने विद्यार्थी जीवन में सीखा उसी ज्ञान से मैं अब भी तेलंगाना में शोधकार्य में जुटा होकर पूज्य गुरुवर्य के ज्ञान पक्ष पर अग्रसर हूँ।

यद्यपि यह सत्य है कि आज भौतिक रूप से पूज्य गुरुवर्य हमारे बीच में नहीं हैं परन्तु जो भी व्यक्ति अपने जीवनकाल में उनके सम्पर्क में आया वह उन्हें कभी विस्मृत न कर सका। अन्त में मैं गुरुजी के एक उपदेश का स्मरण करना चाहता हूँ जिसका मैं स्वयं पालन करता हूँ- ''अपने ज्ञान का विवरण सदैव करते रहने से वह दुनिया में फैल जाता है। अत: ज्ञान को बाँटना आवश्यक है।''

अब भविष्य ऐसे गुरुवर्य शायद ही उपलब्ध हों। ऐसे उदारमना गुरुवर्य को मैं उनके चरणों में शीश नवाकर प्रणाम करता हूँ। आज, इस अवसर पर उनकी जीवन संगिनी पूज्यनीय वहिनी को भी मैं स्मरण करता हूँ जिन्होंने गुरुवर्य के प्रत्येक कार्य में कंधे से कंधा मिलाकर अपनी सहभागिता प्रदान की। यह आदर्श दम्पत्ति के चरण कमलों में मेरा सादर नमन।

- फ्लेट नं. 201, ज्योति क्लब म.नं. 8-2-277/34 / 35, यू.वी. कालोनी रोड नं. 3, बंजारी हिल्स, हैदराबाद 500034, मोबा. 7093378522

■

संस्मरण

डॉ.वि.श्री वाकणकर की हिम्मत

डॉ. अशोक त्रिवेदी

मेरे पूज्य पिता जी डॉ. हरिहर त्रिवेदी मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग के संचालक व पुरातत्व इतिहास उत्खनन के साथ एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मुद्राशास्त्री वाली, प्राकृति, बाह्री एवं संस्कृत के विद्वान थे। श्री वाकणकर पिता जी को पुरातत्व में अपना गुरू मान कर बड़ी श्रद्धा रखते थे। स्वाभाविक था कि मेरी माता जी भी उन्हें पुत्रवत् व हम सब भ्राता डॉ. मन्डन त्रिवेदी व मैं व मेरा अनुज अनील श्री विष्णु भाई को अग्रज के समान ही सम्मान देते थे। एवं श्री वाकणकर जी भी हमारे परिवार के सदस्य के रूप में स्नेंह रखते थें। आवरा इन्द्रगढ भानपुरा से लगभग 13 किलोमीटर पर मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग द्वारा जून्य पिता जी के तत्वाधान में उत्खनन जारी था। श्री वाकणकर जी ने भी उसमें सहयोग करने की इच्छा जाहिर की। डॉ. हरिहर त्रिवेदी ने भी शासकीय रूप स्वीकृति दी। और अपनी टीम में द्वितीय पद रूप से सम्मिलित किया। अंत वे भानपुरा डाक बगले से इन्द्रगढ़ के जंगलो में टेंट लगा कर हमारे साथ ही चौबीसों घन्टे दो-दो माह तक रहते थे। इन्द्रगढ़ का जंगल बड़ा भयानक था व रावतभाटा के चम्बल क्षेत्र से लगा हुआ था और बीच में एक नदी के बहाव पर हमारी टीम डॉ. त्रिवेदी व डॉ. वाकणकर जी के संयोजन पर रहती थी। जंगली जानवरों के भय से रोज रात को अलाव जलाते व सभी टेंटो के आसपास नाली रूपी ट्रेंच खोद दी गई थी ताकि सांप बिच्छू छोटे जानवरों से रक्षा हो पाए। मजदूर, ओवरसीयर फोटोग्राफर, गनमैन, रसोईयों सभी लोगों के दिल में डॉ. त्रिवेदी और वाकणकर जी के तत्वाधान ब्रश, गेती फातड़े व खुरचने वाले औजारों से खुदाई करते। प्रतिदिन नई नई मुर्तियाँ, नालियों का सामान दबे हुए मन्दिर बस्ती का आभास देते थे। कुछ पुराने सिक्के तो कुछ ताँम्बे व सोने के छोटे छोटे आभूषण आदि भी निकल आते थे।

श्री वाकणकर जी को आदिम युद्ध कला के हथियार पैलियोलिथ चाकू तीर सभी पाषण काल युग की अच्छी जानकारी थी और मैने भी उन से काफी सिखा में उन्हें भाऊ ही कहता था। वे प्रात: जल्दी उठकर मुझे साथ लेकर इन्द्रगढ़ की पहाड़ियो में रॉक पेन्टिग पत्थरों पर ढूढ़ने निकल जाते। हमे कुछ स्थानीय आदिवासियों ने बताया था कि उत्तर की पहाड़ियों में एक गुफा हैं। जिसमें cave painting हैं। परन्तु वहाँ एक शेरनी ने बच्चे दिए हैं। अत: उस दिशा में कदापि न जावें। अपनी धुन के पक्के वाकणकर एक दिन मेगनेटिक कम्पास भूल आये थे। अत: दिशा भ्रम के कारण गुफा की चट्टानो में आदिम चित्रकारी खोजते-खोजते पहुंच गयें। और अचानक एक गुर्राहट की आवाज से हमारा ध्यान गया बस ही वाकरणकर जी ने मुझे चुपचाप एक बड़ी चट्टान के पीछे छिपा कर खुद भी छिप गयें। और हमने देखा पृथ्वी पर प्रकृति का सबसे सुंदर विहंगम दृश्य एक बहुत छोटा सा बाघ का अति सुन्दर बच्चा गुफा द्वार से निकल रहा था। मेरा तो खून जम गया साँसे रूक गयी। हम भयभीत होकर देख ही रहे थे कि अचानक हमारे देखते-देखते एक बड़ी सी शेरनी जिसकी लम्बाई लगभग छह-सात फुट होगी दबे पाँव आकर बच्चे को मुँह में दबाकर गुफा में लौट गयी यद्यपि हमें बताया गया था कि शेरनी मानव भक्षी नहीं है। फिर भी है खूंखार जीवन के प्रकृति के इस सुन्दरतम दृश्य भयाकृति वो क्षण मुझे आज भी 77 वर्ष की उम्र में पूरी घटना संमरण जब धूप निकल आयी तब हम चुपके से कॉपते-कॉपते डरते डरते अपने तम्बू लौट रहे थे। जो लगभग दो-ढाई किलोमीटर दूर था। आप कल्पना कर सकते हैं श्री वाकणकर जी की हिम्मत मेरे अग्रज समान गुरू का हाथ कस कर

पकड़े हुए उनके साथ जंगल पार कर रहा था। यह थी वाकरणकर जी की हिम्मत लौटकर सुबह लगभग 9 बजे सारा घटनाक्रम बताया। डॉ. त्रिवेदी ने उसी दिन से श्री वाकणकर जी के साथ एक गनमेन की व्यवस्था कर दी और मेरा सुबह घूमना बन्द कर दिया। मुझे श्री वाकरणकर जी ने तारा विज्ञान जंगल का ज्ञान पौधों की जानकारी समुचित रूप से दे दी थी। सारांश में मेरे गुरू अग्रज भाई श्री वाकरणकर जी अपनी धुन के पक्के अदम्य साहसी विद्वान थे। बाद में मैं पिता जी के साथ जब भी उज्जैन जाता तो उनका मकान फ्रिगंज उज्जैन में अवश्य जाता व उनकी कला विथिका संग्रहालय का आनंद लेता। तब इस शेरनी के सामने पड़ने की घटना का ज़िक हमेशा होता था। हम उस व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए नतमस्तक हैं और इसलिए मैं डॉ. अशोक व मेरे अग्रज डॉ. मंडल त्रिवेदी ने पिता श्री को लगभग पचास प्रतिशत संदर्भ पुस्तकें डॉ विष्णु श्रीधर वाकणकर के संग्रहलय में समर्पित कर हमारे परिवार को अनुग्रहित किया हैं।

– उदयपुर (राज.) ■

शोधपत्र

बूंदी की मुद्रा में युगपरिवर्तन के साक्ष्य

नेहा प्रधान
शोधार्थी, इतिहास विभाग

विश्व इतिहास में जब 15 वीं शताब्दी ई. से यूरोपीय पूनर्जागरण का प्रचण्ड युगान्तर प्रस्तुत हुआ तब से मुद्रा साक्ष्य द्वारा मानव सभ्यता के किसी विशेष कालखण्ड में स्थान विशेष की व्यापक अवस्थाओं पर गवेक्षणा के लिए मुद्रा को महत्वपूर्ण आधार नामांकित किया गया। भारतवर्ष में भी अनेक संस्थाओं व शोधार्थियों ने तत्संबंधी प्रयास 19 वीं शताब्दी से प्रारम्भ कर दिए। बूंदी राज्य जो हाड़ौती 'हाड़ाओं के राज्य' के नाम से सुविख्यात रहा। बूंदी राज्य 24 जून 241 ई. को मीणा शासकों से हाडा राजवंश द्वारा अधिकृत किया गया था एवं भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति तक इसी राजवंश के अधीन रहा था। अपनी स्थानीय मुद्रा का अध्ययन क्षेत्र विशेष शोध का विषय है क्योंकि भारत की केन्द्रीय शक्तियों उदाहरणार्थ मौर्य, सातवाहन व गुप्त आदि राजवंशों ने भी इस पर प्रभुत्त्व स्थापित किया था।

बूंदी में स्थानीय स्वर्ण मुद्रा का अभाव दिखलाई पड़ता है। बूंदी में सर्वप्रथम मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय की चांदी की मुद्राएं प्रचलित थीं जो 1759 ई. से 1859 ई. तक ढाली गईं। द्वितीय सिक्का ग्यारहसना रुपया था जो मुगल बादशाह अकबर द्वितीय के शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष से मुगल साम्राज्य में प्रचलि किया गया था। इसका चलन बूंदी में भी हुआ। यह रुपया विवाह आदि अवसरों पर लेन-देन के काम में लाया जाता था क्योंकि हाली रुपये से इसकी कीमत कम थी। हाली रुपये में डेढ़ माशा मिलावट होती थी और ग्यारहसना में एक माशा मिलावट अन्य धातुओं की रहती थी। हाली रुपये पर एक ओर सिक्का मुबारिक साहिब किरन शान शाह आलम और दूसरी तरफ जर्बसन सोलह जुनून मैमनत मानूस अंकित रहता था। उस पर एक तीर, एक बड़ा धनुष और फूल का चिह्न अंकित रहता था। तौल में यह 171 ग्रेन था।

इसमें एक छोटा झाड़ भी होता था। ग्यारहसना में लेख वैसा ही रहता था परन्तु उसमें झाड़ के चिन्ह का अभाव था। इसका तौल 168ग्रेन था और बूंदी के सिक्के की तुलना में इसकी कीमत 14.5 आना होती थी। इसी तरह 1859 ई. से 1886ई. के बीच रामशाही रुपये का प्रचलन हुआ। इसमें एक ओर अंग्रेजी में क्वीन विक्टोरिया का नाम और ई. सन् का अंक लगा रहता था। कभी-कभी भूल से सन् को उल्टा करके बनाया जाता था। सिक्के के दूसरी तरफ इस सिक्के में नागरी लिपि में रंगेश भक्त बून्दीश रामसिंह अंकित रहता था। इसका वजन 170.5 ग्रेन होता था। इसकी अठन्नी और दुअन्नी भी बनाई, जो कि चांदी की होती थी। इन पर रुपये की भांति अंकन भी होता था। इनका वज़न क्रमश: 85.5 ग्रेन, 42.5 ग्रेन तथा 21 ग्रेन होता था। 1886ई. में कटारशाही रुपया बनाया गया जिसमें एक तरफ अंग्रेजी में विक्टोरिया रानी का नाम और कटार का चिह्न और दूसरी ओर नागरी में बून्दीश रामसिंह 1843 अंकित रहता था। इसका वज़न 165 ग्रेन होता था। इसकी भी चांदी की अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी चलाई गई। इन पर रुपये की भांति ही अंकन होता था। इनका वज़न क्रमश: 8.5 ग्रेन, 41.5 ग्रेन होता था। बूंदी के सिक्के अजमेर व मालवा में भी चलते थे।

1899-1900 में बूंदी के सिक्कों की कीमत घटने लगी। यहां तक कि 162 बूंदी के सिक्के 100 कलदार के बराबर हो गए। 1901 ई. बूंदी दरबार ने कलदार के प्रचलन के साथ चेहरेशाही रुपए के प्रचलन की घोषणा कर दी। चेहरे शाही सिक्के पर एक ओर हाथ में कटार लिए हुए बूंदी नरेश का चित्र अंकित था तथा इसके ऊपर सम्राट एडवर्ड अथवा महारानी विक्टोरिया का नाम अंकित होता था। इसके दूसरी ओर नागरी लिपि में बून्दीश रामसिंह व सं. अंकित होता था। इसमें 11 माशा शुद्ध चांदी व आधा माशा सस्ती धातु होती थी और इसकी कीमत 13.5 कलदार की समता की थी। 1925 में अंतिम बार चेहरेशाही रुपया बना तदन्तर कलदार का प्रचलन हो गया। तांबे का पुराना बून्दी का पैसा चलता था जिस पर चांदी के सिक्के जैसा ठप्पा होता था। ये पैसे चौकोर और कुछ ठीक गोलाकार होते थे जिनका वज़न क्रमश: 135 ग्रेन और 270 ग्रेन होता था। 32 बड़े पैसे का एक रुपया होता था। 1859 से नया बून्दी का पैसा चला। इस पर भी चांदी के सिक्के जैसे अंकन रहते थे। 1865 में चलने वाले ऐसे पैसे का वज़न 270 ग्रेन और 1877 में चलने वाले का 170 ग्रेन था।

सामान्यतया 1901 ई. के पश्चात् अग्रेंजी टकसाल से ही

सिक्के ढलवाए जाते थे। पहले यह कार्य राजकीय टकसाल में होता था। 1901 ई. में दीवान मेधवाहन ने बिना सूचना दिए कटारशाही रुपए एकदम बंद कर दिए जिससे गरीबों और व्यापारियों को काफी नुकसान हुआ। कटारशाही के स्थान पर जब चेहरेशाही सिक्के आरंभ किए गए तब जनता को 12 प्रति आने 100 रुपए पर टकसाल व्यय देकर कटारशाही के स्थान पर चेहरेशाही सिक्के लेने का आदेश दिया गया। 9 मई, 1906ई. को पॉलीटिकल एजेन्ट ने आदेश दिया कि चेहरेशाही सिक्कों पर बून्दी नरेश का चित्र अंकित है जो भारत सरकार के नियमों के विपरीत है अतएव इन्हें रद्द करके शीघ्र नए सिक्के सरकार की स्वीकृति लेकर ढाले जाएँ। बून्दी कौंसिल ने इसका तत्काल पालन करके नागरिकों को एक वर्ष के अंदर चेहरेशाही सिक्के बदलवाने की आज्ञा दी तथा कटारशाही सिक्के पुन: आरम्भ कर दिए। चेहरेशाही को कटारशाही में परिवर्तित करने के लिए खजाने में 2 पैसा प्रति रुपया बट्टा लिया जाता था जिससे जनता को हानि होती थी। 6नवम्बर 1906ई. को एजेन्ट ने इसे तत्काल बंद करने के लिए एक पत्र लिखा। चलन वाले चेहरेशाही सिक्कों में 60 प्रतिशत सुनारी थे, जिससे ब्रिटिश सरकार को भारी हानि थी। 1906ई. में 10 लाख कटारशाही व साढ़े चार लाख चेहरेशाही सिक्के प्रचलित थे। चेहरेशाही सिक्के 1909 ई. ''तक भी पूर्णतया जमा न कराए जा सके। बून्दी में प्राय: जाली मुद्रा भी पाई जाती थी। जब ऐसी मुद्राएं अत्याधिक प्रचलन में देखी जाने लगीं तब इनके विरुद्ध जनता को सतर्क किया गया। 1933 ई. में यह आम आदेश जारी किया गया कि जाली सिंह जहां भी मिलें तुरन्त पुलिस के हवाले कर दिए जाएँ।

बून्दी राज्य में स्वर्णकार व कुछ अन्य व्यक्ति घिसे हुए सिक्कों के स्थान पर बट्टा लेकर नए सिक्के देने का व्यवसाय करते थे। बट्टे की दर सुनिश्चित न थी, जो प्राय: अधिक होती थी जिससे सामान्य जनता को भारी हानि उठानी पड़ती थी। इसी कारण 10 जनवरी 1934 ई. को एक आदेश जारी करके जनता को सूचित किया गया कि घिसे हुए सिक्के बिना कोई बट्टा दिए राजकीय विभाग महकमाखास में बदले जा सकते हैं।

1901 ई. के पश्चात् मात्र कटारशाही सिक्के का ही प्रचलन था। इनके मूल्य में निरन्तर ह्रास होता गया। 1927 ई. को 100 कटारशाही सिक्के रुपयों का मूल्य 70.15 अंग्रेजी रुपयों के समकक्ष ही रह गया था। इस पतन के दो कारण थे। प्रथम उन वर्षों में चांदी का सर्वत्र अभाव था। द्वितीय पड़ौसी राज्यों में जैसे कोटा, झालावाड़ आदि में भी मुद्रा का ह्रास हो रहा था। 31 दिसम्बर 1927 के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि ब्रिटिश रुपए की विनिमय की दर में भारी उतार-चढ़ाव के कारण भीषण क्षति हुई थी। ब्रिटिश मुद्रा में जितना व्यय होता था उसकी तुलना में इस मुद्रा में आय कम थी। इसके परिणामस्वरूप राज्य को ब्रिटिश मुद्रा में स्थनीय मुद्रा का विनिमय करके भारी क्षति वहन करनी होती थी। विनिमय की दर में परिवर्तन का कारण बनियों की लाभ प्राप्ति की प्रवृत्ति थी। यद्यपि बून्दी की मुद्रा से संबंधित मुद्दों में व्यय से अधिक आय वाला बजट भी बनाया गया किन्तु ब्रिटिश मुद्रा से संबंधित मुद्दों वाला एक संतुलित बजट बनाना नितान्त असम्भव था। इसी कारण सम्पूर्ण विनिमय में सदैव आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ा था जिससे राज्य की प्रगति भी अवरुद्ध हो जाती थी। 1927 ई. तक भारत सरकार ने कई अन्य राज्यों की मुद्राओं का ब्रिटिश मुद्रा में परिवर्तित कर दिया था। इसी कारण इस वर्ष बून्दी महाराव में भी मांग की कि ऐसा ही बून्दी के सिक्कों के साथ भी किया जाए। बून्दी राज्य में अब टकसाल इस कारण बंद कर दी गई कि स्थानीय मुद्रा अधिक प्रसारित न हो जाए। जब भी राज्य के कोषागार में घिसी हुई मुद्रा भारी मात्रा में एकत्र हो जाती थीं अथवा किसी मुद्रा का प्रचलन बन्द कर दिए जाने से उसके सिक्के कोष में एकत्र हो जाते थे तब उन्हें ब्रिटिश सरकार की अनुमति लेकर बम्बई की टकसाल में गलाने के लिए भेज दिया जाता था जहाँ से इन सिक्कों की चांदी से प्रचलित सिक्के ढलवाकर मंगाए जाते थे। इसी के उदाहरणस्वरूप 8जनवरी 1832 ई. को बून्दी के दीवान ने बम्बई के गवर्नर से उक्त विषय में याचना करते हुए एक पत्र लिखा कि 'बूंदी के राजकोष में 2 लाख रुपए की चेहरेशाही मुद्रा है। ऐसे प्रत्येक सिक्के में 11 माशा शुद्ध चांदी व आधा माशा सस्ती धातु है। बूंदी महाराव चाहते हैं कि इन सिक्कों को जो अब चेहरेशाही के प्रचलन समाप्त हो जाने से यों ही पड़े हैं, बम्बई की टकसाल में गलाकर कटारशाही सिक्के ढाले जाएँ।'' बूंदी की मुद्रा प्रचलन पर ग्रामीण प्रशासन की भी निगरानी थी।

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि समीक्षाधीन राज्य हाड़ा राजवंश के शासनकाल में विभिन्न बाह्य शक्तियों की राजनीति का ग्रास बना रहा। स्थनीय आय-व्यय का क्षेत्र लगभग उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित होने व पाश्चात्य प्रभुत्व की स्थापना के कारण मुद्रा निर्गमन बढ़ने लगा। पूर्वकालिक कौड़ी प्रथा का अवसान होने लगा। पाश्चात्य शिक्षा में प्रवीण राज्यकर्मियों ने पौण्ड, स्टर्लिंग की विनिमय दर के आधार पर मुद्रा में चांदी का समावेश किया। इस प्रकार लघु राज्य होने पर भी बून्दी राज्य अन्तत: बाह्यशक्ति की मुद्राओं की अपेक्षा अपनी स्वतंत्र मुद्रा को अपना राज्य चिह्न बनाने में सक्षम हो सका।

संदर्भ : 1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा- राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, पुरातत्व भाग 1, पृष्ठ 36। 2. वही पृ. 35। 3. वेब- करेन्सीज ऑफ दी हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ. 85-86। 4. अभिलेखागार, बीकानेर बस्ता नम्बर 15, फाइल नम्बर 17, महकमा खास, बून्दी। 5. प्रबंधसार- पं. गंगासहाय, पृ. 37

- कोटा (राज.)

आलेख

हिन्दी सिनेमा के भगीरथ, पितामह दादा साहब फाल्के

डॉ. नम्रता दवे

''चलो आज फलां फिल्म देखने चलते हैं,'' ''मुझे तो फलां मूवी बहुत अच्छी लगी''। ''मेरा फेवरेट हीरो शाहरूख खान है।'' आदि-आदि ऐसे संवाद आपको अक्सर सुनाई देते होंगे। पर क्या कभी आपने सोचा है, कि इन संवादों का जन्मदाता कौन है ? आखिर वो कौन है, जिसकी या जिनकी कठोर तपस्या का परिणाम है हमारा आज का मनोरंजन उद्योग ? कौन है, जिसकी कठिन साधना के कारण हमारा भारतीय फिल्मजगत अस्तित्व में आया ? आज हम जिसे रूपहला पर्दा कहते हैं, जिसने हिन्दुस्तान को न जाने अनगिनत, अनमोल मोती दिये हैं। नायक, नायिका, गायक, गायिका, निर्देशक, निर्माता, गीतकार, संगीतकार आदि के रूप में। उस फिल्म उद्योग की नींव कैसे पड़ी ? कभी सोचा है ?

तो चलिए आज एक ऐसी कहानी से रू-ब-रू होते हैं, जो हमें उस शक्तिसयत से मिलवाएगा जिसकी बदौलत हमने भारतीय सिनेमा का अनमोल तोहफा पाया। वो महान व्यक्ति थे- ''दादा साहब फालके''।

मेरा परम सौभाग्य था कि उनके पौत्र श्री चन्द्रशेखर पुसलकर जी से मिलने व उनका साक्षात्कार लेने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था। परंतु दादा साहब के महान् कार्यों को महज़ कुछ शब्दों में बाँधकर ''गागर में सागर'' भरने की कला तो शायद उनके जैसा महान् व्यक्ति ही कर सकता है। फिर पं. विजयशंकर मिश्र गुरुजी ने आखिर इस कार्य को स्वयं न करके मुझे इन कार्यों के लिये क्यों चुना ? ये मेरी समझ से परे था। खैर गुरु आज्ञा मानकर जब इस कार्य को करने बैठी तो प्रतीत हुआ कि यह कार्य तो अत्यन्त दुष्कर है। इसीलिये इस कार्य को सम्पूर्ण करने में लगभग डेढ़ वर्ष से भी अधिक समय लग गया। फिर भी, त्रुटियों हेतु क्षमा की आशा करते हुए अपनी क्षमतानुसार इस कार्य को करने का प्रयास किया।

पुसलकर जी से मुलाकात का सुअवसर मुझे 16अगस्त, 2017 को मेहता ऑडिटोरियम, इलाहाबाद में ''व्यंजना आर्ट एण्ड कल्चर'' द्वारा आयोजित ''भारतीय सिनेमा का विकास'' विषय पर एक सेमिनार में प्राप्त हुआ था। वहीं पं. विजय शंकर गुरुजी ने श्री पुसलकर जी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मृदुला पुसलकर जी से मेरा परिचय करवाया तथा साक्षात्कार हेतु समय व स्थान तय कर लिया।

नियत स्थान पर, नियत समय पर पहुँची, जहाँ पुसलकर दम्पती ठहरे हुये थे। काफी आत्मीयता एवं अपनत्व के साथ आप दोनों ने मेरा स्वागत किया। अधिकांशत: अंग्रेजी में ही उन्होंने बातचीत की तथा संवाद का माध्यम उन्होंने अंग्रेजी भाषा को चुना जिसका यथासम्भव हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।

श्री चन्द्रशेखर पुसलकर जी ने जहाँ ''दादा साहब'' के विषय में काफी महत्वपूर्ण बातें बताईं, वहीं श्रीमती पुसलकर ने दादा साहब की धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती बाई फाल्के के विषय में तथा उनके सहयोग और संघर्ष के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी।

दादा साहब के शुरुआती जीवन के बारे में बताते हुये श्री पुसलकर जी ने बताया कि दादा साहब फाल्के का मूल नाम धुमण्डीराज गोविन्द फाल्के था। उनका जन्म 30 अप्रैल 1870 में महाराष्ट्र के ''नासिक'' शहर से 20 मील दूर त्रयम्बकेश्वर नामक गाँव में बड़े ही धार्मिक व पवित्र वातावरण में हुआ था। उनके पिता दादजी शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। दादा साहब धार्मिक परिवेश में पले-बढ़े इसीलिए अपने पिता श्री दादजी शास्त्री को पूजा आदि धार्मिक कार्यों में सहायता भी किया करते थे। दादा साहब के ज्येष्ठ भ्राता, जिन्हें सब प्यार से बापू बुलाते थे, उनसे 12 वर्ष बड़े थे, भी इन कार्यों में मदद किया करते थे।

दादा साहब रंगोली बनाने, गणपति प्रतिमा बनाने तथा सजावट आदि का कार्य बखूबी करते थे। उनके अभिभावक तथा उनके बड़े भाई बापू ने उनकी इन कलाओं में प्रतिभा और निपुणता को समझा। उनके पिता मुम्बई के विलसन कॉलेज में संस्कृत पढ़ाते थे। उस समय दादा साहब की आयु 12 वर्ष थी। दादा साहब महाराष्ट्र स्कूल ऑफ़ हायर एज्युकेशन में पढ़ते थे। उनके मित्र उनके नाम को बिगाड़कर उनका मजाक उड़ाते थे, जैसे धोंडू, धोड़ा आदि। इसीलिए उन्होंने अपने मित्रों से उन नामों की बजाए दादा साहब कह कर पुकारने का आग्रह किया। इस तरह से उनका नाम ''दादा साहब'' पड़ गया।

उनके पिता चाहते थे कि दादा साहब उन्हीं के पद चिह्नों पर चले और आगे की पढ़ाई विल्सन कॉलेज से करें। परंतु उनके भाई, बापू के आग्रह पर दादा साहब का मुम्बई स्कूल ऑफ आर्ट्स में दाखिला करवाया गया।

उनके बड़े भाई ''बापू'' जिनका शुभ नाम शिवराज पंथ था, को बड़ौदा कला भवन में नौकरी मिल गई। इस घटना ने दादा साहब के जीवन में काफी महत्वपर्ण भूमिका अदा की। दादा साहब की मुलाकात यहाँ प्रो. गज्जर से हुई, जिनसे उन्होंने चित्रकल आर्किटेक्चर तथा फोटोग्राफी के गुर सीखे और एक बहुत ही निपुण फोटोग्राफर बन गये।

बाद में उन्होंने गुजरात में एक स्टूडियो स्थापित किया। अब तक दादा साहब का विवाह हो चुका था। यह उनका प्रथम विवाह था। गुजरात में इस भ्रांति के चलते कि कैमरा शरीर से ऊर्जा खींच लेता है, उन्हें अपना स्टूडियो बन्द करना पड़ा। संयोगवश कुछ लोगों की मृत्यु भी कैमरे से फोटो खींचने के बाद हुई थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच उन्होंने अपनी पहली पत्नी और पुत्र को प्लेग की महामारी के कारण खो दिया। तत्पश्चात् वो बड़ौदा में अपने ज्येष्ठ भ्रात के पास आ गये। अब उन्होंने जादू की कला में निपुणता हासिल की, जो उन्होंने जर्मन जादूगर प्रो. हर्ट्स से सीखी थी। दादा साहब ने प्रो. केल्फा के नाम से जादूगरी की कल का प्रदर्शन भी किया। हिन्दी में ''केल्फा'', ''फाल्के'' का ठीक उल्टा प्रतिरूप है। इस प्रकार कुछ समय तक उनकी जीविका चलती रही। दादा साहब ने प्रो. रामानुज से बड़ौदा में नाट्यकल की विधिवत शिक्षा भी प्राप्त की, जो कि पश्चातवत् उनके फिल्म निर्माण में बहुत काम आया। सन् 1920 में उन्होंने ''रंगभूमि'' नाटक का निर्माण किया। उस जमाने में इस नाटक में 60,000 रुपये की लागत आई थी। मराठी नाट्य की दशा उस समय काफी शोचनीय थी, इसलिए उन्होंने इस नाटक ''रंगभूमि'' को लिखा व निर्माण किया। एक आदर्श नाटक कैसा हो ? उसमें ये सारे तत्व समाहित थे। माननीय लोकमान्य तिलक ने भी यह स्क्रिप्ट देखी और अत्यन्त प्रसन्न हुए।

दादा साहब ने पुराततव विभाग में ड्राफ्टमैन कम फोटोग्राफर के रूप में सरकारी नौकरी भी की। इसमें प्राचीन सभ्यता क ी खोज आदि के लिये काफी फील्ड वर्क करना पड़ता था। शुरुआत में वो इस नौकरी से खुश थे परंतु बाद में परेशान रहने लगे। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भी भागीदारी की थी। उन्होंने लोनावला के प्रो. वालावाल्कर बनारकर से प्रिंटिंग तकनीक भी सीखा। सौभाग्यवश उन्हें राजा रवि वर्मा के प्रेस में फोटोलीथोट्रान्सफर का कार्य मिल गया। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के लिए ब्लॉक प्रिंटिंग का काम भी किया। लोनावला थोड़ी असुविधाजनक स्थान पर स्थित है, जो मुम्बई और पूना के बीच में है। इसीलिए उनहोंने अपना प्रेस लोनावला से मुम्बई में स्थानान्तरित कर लिया जिसका नाम रखा ''लक्ष्मी आर्ट्स प्रिंटिंग प्रेस''। यहाँ उन्होंने अच्छा व्यवसाय किया परंतु उनके सहयोगी ''मुन्जी'' की पैसे के प्रति लालसा बढ़ती गई, इसीलिए दादा साहब ने प्रेस छोड़ दिया। अब आगे क्या ? यह एक बड़ा प्रश्न था।

उनके ज्येष्ठ पुत्र, जिन्होंने हरिशचन्द्र तारामति में रोहिताश्व की भूमिका निभाई थी कि आयु मात्र सात वर्ष थी। उन दिनों गिरगाँव मुम्बई में भारत-अमेरिका का एक टेन्ट एक्ज़िविशन लगा, जहाँ दोनों पिता-पुत्र ने ''लाइफ ऑफ जीजस क्राइस्ट'' नामक एक फिल्म देखी। यह घटना उनके जीवन में ''मील का पत्थर'' साबित हुई। क्योंकि जब वो यह फिल्म देख रहे थे तो हिन्दू पौराणिक चरित्रों व दृश्यों की कल्पना कर रहे थे, जैसे राम, कृष्ण, अयोध्या, गोकुल आदि और उनके मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति पर चलचित्र बनाने का विचार कौंधा ताकि दूसरे देशों के लोग भी भारतीय परम्परा व संस्कृति से अवगत हो सकें। अत: भारतीय फिल्म उद्योग स्थापित करने का भागीरथ प्रयास उन्होंने प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद उनकी दिनचर्या अत्यन्त व्यस्त हो गई। वो ब-मुश्किल दो-तीन घंटे नींद ले पाते थे। फिल्म निर्माण सम्बन्धी अध्ययन विभिन्न प्रकार से करने लगे और इस दिशा में प्रत्येक कोण से प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें काफी मुश्किल से फिल्म सम्बन्धी एक पुस्तक प्राप्त हुई, परन्तु यह पर्याप्त नहीं

था। बायस्कोप मैगज़ीन के वो सदस्य बन गये। परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, पर स्वदेशी फिल्म निर्माण का सपना पूरा करने हेतु उन्होंने अपनी अनावश्यक वस्तुओं को जैसे बर्तन, कुर्सी मेज आदि बेचना प्रारम्भ कर दिया। उनका स्वास्थ्य और दृष्टि शक्ति दिनों-दिन क्षीण होती चली गयी और एक दिन वो पूरी तरह से दृष्टिहीन हो गये। डॉ. प्रभाकर के इलाज से उन्होंने पुन: अपनी दृष्टिशक्ति वापस पाई परन्तु उन्होंने साथ ही सावधान भी किया कि अगर पुन: अधिक परिश्रम किया तो उनकी दृष्टिशक्ति हमेशा के लिये जा सकती है। पर दादा साहब कहाँ मानने वाले थे, उनके सर पर तो फिल्म निर्माण की धुन सवार थी। अत: वह पुन: पूरे जोर-शोर से अने काम में जुट गये। उन्हें फिल्म निर्माण तकनीक सीखने हेतु लन्दन जाना था, पर पुन: आर्थिक समस्या। लोगों ने समझा कि दादा साहब पागल हो गये हैं। परंतु उनकी पत्नी ने उनका साथ दिया। उस समय श्री मार्तण्ड कण्डे, जिनकी मुम्बई में अपनी स्पोर्ट्स की दुकान थी, ने दादा साहब की बहुत मदद की। उन्होंने अपनी इन्श्योरेन्स पॉलिसी को गिरवी रखकर दादा साहब को लन्दन भेजा। श्री केपबन ने दादा साहब से आग्रह किया कि वो लन्दन में ही रुककर उनके साथ काम करें तथा भारत जाने का और वहाँ फिल्म उद्योग स्थापित करने का विचार त्याग दें। परंतु दादा साहब नहीं माने और भारत लौट आए।

दादा साहब को अब एक छोटे से गाँव की आवश्यकता थी जिससे वह लन्दन निर्मित प्रयोगशाला की स्थापना कर सकें। सबसे पहले उन्होंने शिवाजी पर फिल्म बनाने की सोची परन्तु किन्हीं कारणोंवश उन्होंने विचार त्याग दिया। उन्होंने देखा कि ''राजा हरिशचन्द्र'' अधिक लोकप्रिय हैं इसलिये उन पर ही पहली फिल्म बनाना तय किया।

उन्होंने एक बीज से लेकर पूर्ण विकसित पौधे की प्रक्रिया को कैमरे में कैद किया। इसके निर्माण में उनको डेढ़ माह का समय लग गया परंतु फिल्म मात्र डेढ़ मिनट की थी। यह उस समय चमत्कर के समान था। लोगों को ये फिल्म बहुत पसंद आई और कुछ पैसों का बंदोबस्त हो पाया। परंतु ये पर्याप्त नहीं था। उनकी पत्नी श्रीमति सरस्वती बाई ने मंगलसूत्र को छोड़कर अपने सारे गहने बेच दिये और इस प्रकार राजा हरिशचंद्र जैसी महान् ऐतिहासिक फिल्म का निर्माण प्रारम्भ हो पाया। निर्मासा संबंधी सारे कार्य (कैमरा छोड़कर) दादा साहब स्वयं ही करते थे। जैसे फिल्म के निर्माता, निर्देशक वे स्वयं ही थे, कॉस्ट्यूम डिजाइनर, मेक-अप, सबटाइटल निर्माण और क्या नहीं ? परंतु समस्या अभी भी कुछ कम नहीं थी। कोई भी अभिभावक नहीं चाहता था कि उनके पुत्र को मरा हुआ दर्शाया जाए। अत: किसी ने उनसे कहा कि आप इस भूमिका के लिए अपने पुत्र को ही क्यों नहीं चुनते हैं ? अत: उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र बालचद्र, जिनका उपनाम ''बाबाराया'' था को दादा साहब ने ''रोहिताश्व'' की भूमिका के लिए चुना। परंतु असली समस्या का सामना तो बाबा साहब को ''तारामती'' के चुनाव के समय करना पड़ा। क्योंकि उस समय स्त्रियों का अभिनय करना अच्छा नहीं माना जाता था। किसी अच्छे घर की स्त्री का इस कार्य को करना तो बहुत दूर की बात थी। अत: किसी सभ्य, शालीन स्त्री का अभिनय करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। अत: दादा साहब लाल बत्ती इलाकों में जाने के लिए बाध्य हुए। परंतु वेश्याओं ने भी अभिनय करने से मना कर दिया। क्योंकि उनको अपने समाज से निष्कासित किये जाने का भय था। उनमें से कुछ ने उनको पूछा कि वो इसके लिए कितना पारिश्रमिक देंगे ? उन्होंने कहा लगभग चालीस रुपये। इस पर उन लोगों ने हँसते हुए कहा कि इतना तो हम एक रात में कमा लेते हैं। कुछ ने कहा कि यदि वो उनसे विवाह कर लें तो वो काम करने को तैयार हैं। अत: दादा साहब को वहाँ से भी खाली हाथ ही लौटना पड़ा। अब दादा साहब हर वक्त ''तारामती'' की भूमिका के विषय में ही सोच में डूबे रहते थे। एक दिन वो एक कॉफीशॉप में गये और उन्होंने एक कप चाय का ऑर्डर दिया। एक सुदर्शन युवक ने उनको चाय दी। उनको देखकर दादा साहब के दिमाग़ में विचार कौंधा। ''अन्ना सालुन्के'' प्रथम पुरुष अभिनेता थे जिन्होंने स्त्री चरित्रों को पर्दे पर निभाया। यह भी दादा साहब के लिए कोई आसान काम नहीं था। अन्ना सालुन्के को मूंछें थी और उनके पिताजी को मूंछें हटाना पसंद नहीं थीं। दादा साहब अंतत: उन्हें समझाने में सफल हुए कि ''रानी तारामती'' की भूमिका निभाना एक पुण्य का काम होगा और मूंछों के साथ स्त्री चरित्र निभाना अच्छा नहीं लगेगा। अत: अन्ना साहब के पिता मान गये।

उनको लगभग सारी फिल्म दिन के उजाले में शूट करनी पड़ी। इस फिल्म की शूटिंग मुम्बई के कसारा गाँव में की गई। दादा साहब ने पूरी यूनिट को पहले भेज दिया और स्वयं बाद में गये। जब युनिट पूरे साज सज्जा, वस्त्रादि के साथ गाँव पहुँची तो गाँव के लोग डर गये, क्योंकि वो असली पौराणिक चरित्रों की भाँति प्रतीत हो रहे थे। उन लोगों ने गाँव वालों को समझाने की कोशिश की, कि वे यहाँ फिल्म की शूटिंग के लिए आए हैं। परंतु उन्हें समझाना अत्यन्त दुष्कर था क्योंकि फिल्म, सिनेमा आदि उनके लिए बिल्कुल नई चीज़ थी, जिससे लोग अभी परिचित नहीं थे। अत: गाँव वालों ने यूनिट के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज करवा दी और पुलिस उन सब यूनिट के सदस्यों को पकड़कर ले गई। जब अगली ट्रेन से बाबा साहब वहाँ पहुँचे तब उन्होंने उन लोगों को समझाया और तब जाकर उन सबको छोड़ा गया। इस तरह से एक के बाद एक समस्या का सामना करते हुए भारतीय फिल्म इतिहास की पहली फिल्म हशिचन्द्र तारामती का निर्माण हुआ। जिसका प्रिमियर 21 अप्रैल सन् 1913 को हुआ। इसमें उच्च वर्ग के लोगों को आमंत्रित किया गया जैसे उद्योगपति, उच्च पदाधिकारी आदि। दादा साहब और उनकी पत्नी, दोनों ही बहुत तनावग्रस्त थे कि फिल्म सफल होगी या नहीं। लेकिन बाद में उन्हें काफी प्रशंसा मिली। 3 मई 1913 में यह फिल्म आम जनता के लिए

रिलीज की गई। उन दिनों फिल्में 3-4 दिन से अधिक नहीं चलती थी। परंतु राजा हरिशचन्द्र लगभग 27 दिन तक चली। उनहोंने इसका प्रदर्शन सूरत में भी करने की सोची, परंतु इसका प्रथम संकलन केवल 3 रुपये ही हो पाया था। इसीलिए आयोजक ने आगामी प्रदर्शनों को स्थगित करने का निर्णय लिया। तब दादा साहब ने एक विज्ञापन, एक समाचार पत्र में छपवाया और अगला शो हाउसफुल गया। यह सिनेमाजगत का सबसे पहला प्रमोशन (प्रचार) था। आज तो पब्लिशिटी, प्रमोशन आदि शब्द काफी लोकप्रिय हैं। इसके पश्चात् आपने ''सत्यवान सावित्री'' और ''मोहिनी भस्मासुर'' का निर्माण किया। उनके ये तीनों चलचित्र लंदन में प्रदर्शित हुए, क्योंकि उन्होंने वचन दिया था कि मैं अपनी फिल्मों के साथ वापस आऊँगा जो भारतीय संस्कृति को दर्शाएगा। उन्होंने जनता के सम्मुख अपनी फिल्मों का प्रदर्शन किया। वहाँ की जनता ये देखकर हैरान थी कि दादा साहब तकनीकी दृष्टि से कितने उत्कृष्ट थे! वो भी इतने कम लागत व संसाधन और नये टेक्नीशियन के साथ, तथापि परिणाम इतना उत्कृष्ट। दादा साहब को वहाँ 20 प्रतिशत की साझेदारी का प्रस्ताव मिला, साथ ही साथ उन्होंने उन्हें बंगल और गाड़ी भी उपहार स्वरूप देना चाही। परंतु दादा साहब ने विनम्रतापूर्वक यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और वापस भारत आकर भारतीय पृष्ठभूमि पर और अधिक फिल्में बनाने का निर्णय लिया। वो एक महान् देशभक्त थे, ये उनका एक बहुत बड़ा त्याग था। जब वो लौटे तो चारों ओर युद्ध का माहौल था। सभी डरे हुए थे, ऐसे में फाइनेन्सरों ने भी धन देने से मना कर दिया। तब उनकी पत्नी श्रीमति सरस्वती बाई फाल्के ने इस समस्या को अपने कन्धों पर ले लिया। फाइनेन्सर सरस्वती बाई फाल्के पर दबाव डालते रहे कि हमें और धन दो अन्यथा हम तुम्हारा स्टूडियो बन्द करवा देंगे। दादा साहब को उन्नत मशीनों को खरीदने के लिए भी धन की आवश्यकता थी। कम से कम अपने कर्मचारियों को व्यस्त रखने हेतु कुछ धन की व्यवस्था हुई। जिससे उन्होंने एक लघु फिल्म का निर्माण किया। उन्होंने कुछ समाचार पत्रों से भी अपील की कि भारतीय फिल्म उद्योग समाप्ति की कगार पर है अत: आप हमारी सहायता करें। माननीय श्री लोकमान्य तिलक ने उनका स्टूडियो देखा और कुछ आर्थिक सहायता की। उन्होंने बड़ौदा जैसे कुछ रियासती राज्यों में भी अपील की। उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र के रीमेक को बेच दिया और कुछ धन की व्यवस्था की। उन्होंने 'लंका दहन' के निर्माण का निर्णय लिया। धन सीमित था अत: श्री सालुन्के से राम और सीता, दोनों का अभिनय करवाया गया। यह हिन्दी सिनेमा के इतिहास का पहला डबल रोल था। जब 'लंका दहन' प्रदर्शित हुई तो इसे भारी सफलता मिली। आपने इस फिल्म के माध्यम से 10 दिनों में 30,000 रुपयों की आमदनी की। यह भारतीय सिनेमा की प्रथम ''ब्लॉक बास्टर'' साबित हुई। चेन्नई में तो दादा साहब को सिक्कों को ले जाने हेतु पाँच बैलगाड़ियाँ खरीदनी पड़ी और उन्हें चेन्नई से नासिक हेतु पुलिस संरक्षण भी लेना पड़ा। एक समय दादा साहब को धन हेतु भीख मांगनी पड़ी थी, अब दादा साहब के पास प्रस्तावों की बाढ़ सी आ गई थी। उन्होंने अपने सारे उधार चुका दिये। परंतु उन्हें फिर से धन की आवश्यकता हुई ताकि वे अपनी अगली परियोजना पर काम शुरु कर सकें। कुछ उद्योगपति धन देने हेतु तैयार थे। इस तरह पाँच लोग सामने आये और उन्होंने मिलकर हिन्दुस्तान फिल्म कम्पनी और फाल्के फिल्म कम्पनी की नींव रखी। हिन्दुस्तान फिल्म कम्पनी का कार्यालय मद्रास से मुम्बई स्थानान्तरित कर दिया गया। ''श्री कृष्ण जन्म'' और ''कालिया मर्दन'' नामक दो हिन्दी फिल्मों का निर्माण हुआ। दोनों फिल्मों में श्रीकृष्ण की भूमिका उनकी पुत्री मन्दाकिनी ने निभायी। उस समय उनकी आयु मात्र पाँच वर्ष थी। इन फिल्मों ने भी अच्छा व्यवसाय किया और उनके अभिनय को काफी सराहा गया। इस प्रकार मन्दाकिनी हिन्दी सिनेमा जगत की सर्वप्रथम महिला कलाकार हुई। परन्तु उसके पश्चात् मन्दाकिनी ने कभी अभिनय नहीं किया। क्योंकि दादा साहब ने फिर इसकी अनुमति ही नहीं दी। वहीं मन्दाकिनी, मेरी मासी ने 75 वर्ष की आयु में 9 गज साड़ी में धाराप्रवाह अंग्रेजी में बी.बी.सी. में साक्षात्कार दिया। किसी भारतीय चैनल ने नहीं बल्कि बी.बी.सी. वर्ल्ड ने सर्वप्रथम उनका साक्षात्कार लिया। इस प्रकार हिन्दुस्तान फिल्म कम्पनी की पहली दो सफल फिल्में आई।

परंतु दादा साहब को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कला और व्यावसायिकता के बीच लगातार एक द्वंद छिड़ा रहता था। दादा साहब हृय से एक कलाकार थे और धनोपार्जन के विषय में अधिक नहीं सोचते थे। वह तब तक शूटिंग जारी रखते थे जब तक वो दृश्य से सम्पूर्ण रूप से संतुष्ट न हो जाएं, परंतु यह बात उनके सहभागी को पसंद नहीं थी, वो कहते थे कि आप हमारा पैसा बर्बाद कर रहे हैं। दादा साहब इन बातों से परेशान हो जाते और आखिरकार उन्होंने फिल्म उद्योग को अलविदा कह दिय और सपरिवार सन् 1920 के दशक में बनारस आ गये। यहाँ अनेक लोग उनसे मिलने आने लगे। मराठी रंगमंच से जुड़े लोग भी उनसे मिले और परस्पर चर्चा करने लगे। दादा साहब भी नाट्य हेतु पटकथा लेखन में विशेष रुचि रखते थे। क्योंकि वह फिल्म उद्योग से निराश हो चुके थे इसीलिए रंगमंच हेतु वो कुछ करना चाहते थे। मराठी के तत्कालीन मशहूर लेखक श्री नाहा आप्टे से दादा साहब मिले। दोनों ने मिलकर ''रंगभूमि'' नामक नाटक लिखने का तय किया। दादा साहब ने अनेकों लोगों से साक्षात्कार किया और निर्देशक, अभिनेता आदि से यह जानने का प्रयास किया कि नाट्य हेतु किन-किन चीज़ों की आवश्यकता होती है, उन्हें अभिनय आदि में किन-किन परिस्थितियों और परेशानियों आदि का सामना करना पड़ता है आदि-आदि। दादा साहब के अपने भी कुछ सुझाव थे और इन सबके साथ ''रंगभूमि'' लिखी गई। नासिक, पूणे, मुम्बई आदि शहरों में ''रंगभूमि'' का मंचन भी किया गया परंतु दुर्भाग्य से ये असफल रहा। दादा साहब की सारी पूँजी बर्बाद हो गई। उन्होंने लगभग 60,000

रुपये इस नाटक में लगाये थे जो उन दिनों एक विशाल रकम थी। उन्होंने फिल्म उद्योग से जो कुछ भी सीखा था, वो अपना अनुभव और ज्ञान सब इस नाटक में लगा दिया था। यह नाटक अपने में एक अच्छा संदेश समेटे था, परंतु लोगों की समझ में नहीं आया और नाटक बुरी तरह असफल हो गया। मराठी नाट्य के उत्थान हेतु दादा साहब के पास बहुत सारे अच्छे उपाय और सुझाव थे। परंतु दुर्भाग्यवश लोगों ने उनको नहीं समझा। इस बीच कई पत्र आने लगे। कुछ प्रशंसक मुम्बई से बनारस दादा साहब से मिलने आये और उन्हें समझाया कि आप हिन्दी सिनेमा के पितामह हैं, आप यहाँ बनारस में क्या कर रहे हैं? आप कृपया वापस चलिए और हिन्दी फिल्मों हेतु कुछ करिये। श्री आप्टे ने भी उनसे अनुरोध किया।

उनके अनुरोध पर दादा साहब वापस मुम्बई आ गये। परंतु इस बार वो एक साधारण कर्मचारी की तरह रहने लगे। यद्यपि लोग उनक पूरा सम्मान करते थे। परंतु अब वो अपना वह उत्साह खो चुके थे जो प्रारम्भ में था। क्योंकि पहले फाल्के फिल्म्स के वो एकल स्वामी थे। पहले वह हर काम सटीकता से करते थे और सब कुछ उनके हाथ में था परंतु अब उनको किसी के निर्देशों के अनुसार चलना पड़ता था। हालांकि वो अपनी कला का सम्मान करते थे और अब भी पूरा न्याय करते थे। इस प्रकार उन्होंने हिन्दुस्तान फिल्म कम्पनी के लिए भी कुछ फिल्मों का निर्माण किया। दादा साहब बहुत अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे और परफेक्शनिस्ट भी। उदाहरण के तौर पर मैं आपको एक वाकया बताऊँ, उनकी एक धार्मिक फिल्म में एक दृश्य था जिसमें सुग्रीव का चरित्र निभा रहे वह व्यक्ति बहुत भयभीत थे। दादा साहब ने कहा आप कूद जाइये मैंने जाल बिछवा दिया है, जो कैमरे में नहीं आएगा, आप निस्संकोच कूद जाइये। वह व्यक्ति कूद गया। सबने समझा दृश्य पूरा हो गया। परंतु दादा साहब ने जब वह दृश्य देख तो पाया कि कूदते समय उस व्यक्ति ने आँखें बंद कर ली थी। सब ने कहा, इस बात पर कोई ध्यान नहीं देगा, किसी को पता नहीं चलेगा। पर दादा साहब बोले, ''मुझे तो पता है!'' अत: दृश्य दुबारा फिल्माया गया। इसी तरह एक बार उनकी युनिट की बस दस पंद्रह मिनट देरी से पहुँची पर दादा साहब बिल्कुल सही समय पर पहुँच गये थे। वो बहुत नाराज हुए और उस दिन शूटिंग ही स्थगित कर दी। ऐसे अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे। परंतु वह जितने अनुशासनप्रिय थे, दिल से उतने ही नरम थे। मेरी माँ बताया करती थी कि वो बहुत गोरे थे और जब वो गुस्सा होते थे तो उनका चेहरा एकदम लाल हो जाता था। पर वो बहुत अच्छे पिता थे। मेरी माँ दादा साहब की छोटी पुत्री थीं। उनकी दो पुत्रियां और सात पुत्र थे।

दादा साहब फाल्के के सबसे बड़े पुत्र बाबा राया ने रोहिताश्व की भूमिका निभाई थी। बाद में वो एक अच्छे फोटोग्राफर हुए। गंगावतरण फिल्म में उन्होंने ट्रिक फोटोग्राफी की थी। बाबा बालचन्द्रन और मन्दाकिनी ने बाल कलाकार के रूप में उनकी फिल्मों में काम किया। उनके एक और पुत्र सुरेश फाल्के ने हास्य अभिनेता के रूप में मराठी फिल्मों और नाटकों में काम किया। परंतु दादा साहब के जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव थे, इसीलिए वो नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे फिल्म क्षेत्र में आएँ। क्योंकि इस क्षेत्र में स्थिरता नहीं है। ज्यादातर समय दादा साहब को चिन्तन, मनन और विभिन्न प्रयोगों आदि में गुजारना पड़ता। अत: वो अपना ज्यादातर वक्त स्टूडियों में ही गुज़ारते। इसीलिए परिवार को बहुत ही कम समय दे पाते। अत: बच्चों की परवरिश तथा उनकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी उनकी पत्नी श्रीमति सरस्वती बाई पर थी। इन सब परिस्थितियों के कारण बच्चों की पढ़ाई ठीक से न हो पाई। उनके एक पुत्र नीलकांत कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। वो गोल्फकोर्ट में जाया करते थे और पिकर बॉय का काम करते थे, सो जर्मन लोगों से उनकी मित्रता हो गई। उन लोगों ने नीलकांत को जर्मन भाषा सिखाई। दादा साहब ने जब देखा कि इतने कम समय में नीलकान्त ने जर्मन भाषा पर इतना अधिकार कर लिया है, तो बहुत प्रभावित हुए। दादा साहब ने नीलकान्त को कुछ पुस्तकें लाकर दीं। जैसे ''सेवन डेज जर्मन'', ''फ्लुएंट जर्मन'' आदि। आगे चलकर वो अच्छे द्वि-भाषी बने। टायफायड के कारण वाराणसी में बहुत कम आयु में उनकी मृत्यु हो गई। इसी तरह दादा साहब के एक और पुत्र श्री कृष्णा की पेट में गेंद लगने से अल्पायु में मृत्यु हो गई।

उनके एक और पुत्र श्री प्रभाकर फाल्के को भी कैमरा उपकरणों आदि में रुचि थी। अध्ययन हेतु उन्होंने नासिक में नौकरी कर ली। उनके कनिष्ठ पुत्र देवदत्त का कंठस्वर अच्छा था। मात्र पाँच वर्ष की आयु में वो हारमोनियम बजाकर गाया करते थे। आगे चलकर उन्होंने मंदिरों में कीर्तन, सत्संग आदि में संगत करना प्रारम्भ कर दिया, उनकी आवाज मधुर थी इसीलिए वो गाने भी लगे। उन्होंने बसंत देसाई के समूह में भी गाया। परंतु उस समय मीडिया का इतना विस्तार नहीं था।

प्रश्न :- आप अपने विषय में कुछ बताइये सर।

श्री पुसलकर :- दरअसल दादा साहब की द्वितीय पीढ़ी में से कोई भी फिल्म क्षेत्र में नहीं आया। मेरी माँ इस क्षेत्र में अन्तिम थीं। अब हमारी ये तीसरी पीढ़ी है पौत्र-पौत्री मिलाकर हम कुल चौदह लोग हैं, मैं भी उनमें से एक हूँ। मैं चन्द्रशेखर पुसलकर, मैं मुम्बई के माहिम क्षेत्र में रहता हूँ। वर्तमान में मेरी आयु 65 वर्ष है। मैंने फाइनेन्स एक्ज़ीक्यूटिव के रूप में लगभग 25 वर्ष क्रॉम्पटन ग्रीव्ज़ लिमिटेड में काम किया है।

प्रश्न :- आपने कभी फिल्म क्षेत्र में जाने का नहीं सोचा?

श्री पुसलकर :- जब द्वितीय पीढ़ी पर फिल्म क्षेत्र से बुरा प्रभाव पड़ा तो हमारे मन में भी एक भय पैदा हो गया कि यह क्षेत्र भरोसे के योग्य नहीं है। अभी भी इस क्षेत्र में कोई स्थिरता नहीं है। हम मध्यमवर्गीय परिवार से ताल्लुक रखते हैं। अत: हमारी प्राथमिकता अध्ययन है। दादा साहब ने भी किसी फिल्म से यदि बहुत कमाया तो अगली फिल्म में वो सारा पैसा गंवा दिया।

जी हाँ, कई बार लोग दिवालिया भी हो जाते हैं किसी फिल्म के निर्माण के पश्चात्।

हाँ! इसीलिए एक भय था जैसे मेरी एक बहन है वो एक कॉलेज के वनस्पति विभाग में विभागाध्यक्ष हैं, ऐसे ही सभी हैं...

प्रश्न :- अच्छा तो सभी ने पढ़ाई के क्षेत्र को अपनाया।

हाँ, बल्कि मैं भी हारमोनियम बजा लेता हूँ और संगत भी करता हूँ। परंतु मैंने इसको व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाया। ये मेरा शौक है। मैं मिमिक्री करता हूँ। अपनी कम्पनी या सोसायटी में कार्यक्रम का संचालन करता हूँ, पर छोटे स्तर पर। मुझमें ये प्रतिभा है शायद दादा साहब के कारण, बल्कि मेरी माँ भी अच्छी मिमिक्री करतीं थीं।

श्रीमति मृदुला पुसलकर :- मेरी सास बहुत ही सरल स्वभाव की महिला थीं उनके कोई नखरे नहीं थे। वो बताती थीं कि उनके पिता यानी दादा साहब फाल्के कितने अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने जो एक युग निर्माण किया, आज बॉलीवुड में कितनी फिल्में बनती हैं। बॉलीवुड, हॉलीवड के बराबर हो गया है। दादा साहब बहुत परफैक्शनिस्ट और समय के पाबंद थे पर उनके जो पार्टनर थे वो व्यावसायिक प्रवृत्ति के थे। इसीलिए दादासाहब से दूसरों का तालमेल नहीं बैठता था। क्योंकि दादा साहब व्यवसाय से ऊपर कला को स्थान देते थे। तो इसके लिए सरस्वती बाई फाल्के यानी मेरी दादी सास को भी बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर उन्होंने जो योगदान दिया वो किसी को नहीं पता इसीलिए मुझे बताना पड़ता है।

सरस्वती बाई फाल्के बहुत पढ़ी-लिखी महिला नहीं थीं। बड़ौदा, गुजरात की थीं और सात पीढ़ियों के बाद वो ही पहली कन्या सन्तान थी। उनके मामा बहुत जाने माने नाटककार थे। भैरव कोलेटकर, वो बहुत अच्छे अभिनेता थे और उस ज़माने में तो स्त्री का चरित्र भी पुरुष ही निभाते थे। उनकी मृत्यु सन् 1901 में बहुत कम आयु में हो गई।

उनके पिता की भी एक नाटक कम्पनी थी। सरस्वती बाई का परिवार बहुत गरीब था और ज्यादा आय नहीं थी उनकी। दादा साहब फाल्के और सरस्वती बाई में आयु का बहुत अन्तर था। उस ज़माने के हिसाब से सरस्वती बाई के विवाह की आयु ज्यादा हो गई थी। फिर भी दादा साहब तैयार नहीं थे। वो दूसरों जैसे नहीं थे। उनको ये सब पसंद नहीं था कि अपने से इतनी छोटी लड़की से शादी करना फिर उससे काम करवाना। पर कुछ ऐसा हुआ कि दादा साहब को उनसे शादी करनी पड़ी।

सरस्वती बाई 20-25 लोगों का खाना अकेले बनाती थीं, पूरी यूनिट के लिए। दादा साहब सबके साथ बैठकर खाना खाते थे। इतना ही नहीं, वो सभी का ध्यान भी रखती थीं। रात को 10 बज जाते थे ये सब करने में, फिर वो हैण्डप्रिंटिंग करतीं थीं, फिल्म के लिए। तब हैण्डपंच करने की मशीन होती थी। वो काम रात के 2-2 बजे तक काम करती थीं। अब तो तकनीक काफी विकसित हो गई है, पर तब फिल्म बहुत कच्ची हुआ करती थी। दादा साहब ने सरस्वती बाई को सिखाया कि कैसे फिल्म को डेवलप किया जाता है। इसके अलावा उस समय रिफ्लेक्टर भी नहीं होते थे। तो सरस्वती बाई सफेद चादर लेकर कड़ी धूप में घण्टों खड़ी रहती थीं तभी शूटिंग चलती थी। उनका व्यवहार भी बहुत अच्छा था पर दादा साहब थोड़े क्रोधी स्वभाव के थे, तो उनको भी सम्भालना पड़ता था। दादा साहब को बहुत उतार-चढ़ाव देखने पड़े। कभी-कभी इतने पैसे मिलते थे,कभी-कभी सब चला जाता था। सरस्वती बाई को इन सबके बीच बच्चों का ध्यान रखना पड़ा, जो काफी मुश्किल था इसीलिए अगली पीढ़ी ने इस व्यवसाय में कदम नहीं रखा क्योंकि इस क्षेत्र में बहुत उतार-चढ़ाव हैं, स्थिरता नहीं है। इसी कारण से बच्चे बहुत अधिक अपनी पढ़ाई नहीं कर पाये परंतु उनका दिमाग़ काफी तेज था। वो जो कुछ भी बोलते उससे कुछ शोध सामग्री मिलती थी। सरस्वती बाई हर छोटी-बड़ी बात का ध्यान रखतीं थीं। जैसे किसी यूनिट के सदस्य के पास अच्छे कपड़े नहीं है तो वो उनके लिए कपड़े सिलकर भी देती थीं।

श्रीमती सरस्वती बाई के कार्यों को मान्यता मिलनी चाहिए। क्योंकि 100 साल पहले महिलाओं को ये स्वतंत्रता नहीं थी कि वो घर से बाहर निकलें, पढ़ाई-लिखाई करें। ऐसे समय में वो पहली महिला टेक्नीशियन थीं, हिन्दी सिनेमा की। अत: उनके नाम से एक पुरस्कार होना चाहिए जो हिन्दी सिनेमाजगत की महिला टेक्नीशियनों को दिया जाना चाहिए। जैसे महिला निर्देशक, निर्माता, कैमरापर्सन इत्यादि को। महाराष्ट्र सरकार के श्री विनोद तावड़े ने फिल्म सिटी, गोरेगाँव मुम्बई में दादा साहब फाल्के तथा श्रीमती सरस्वती बाई वस्तु संग्रहालय बनाने की स्वीकृति प्रदान की है। हम इसे शुरू कर रहे हैं और आशा करते हैं कि एक अवार्ड भी शुरु किया जाए सरस्वती बाई के नाम से। दादा साहब के नाम से तो बहुत पुरस्कार हैं, पर सरस्वती बाई के नाम से नहीं है।

प्रश्न :- दादा साहब के जीवन पर कोई फिल्म बनी है ?

श्री पुलसकर :- दादा साहब पर काफी किताबें आई हैं। नहीं, फिल्म यानी बायोपिक; जैसे महान् लोगों के जीवन पर बनाई जाती है।

मूवी तो नहीं पर डॉक्यूमेन्ट्री है। जैसे दो-तीन मैंने देखी हैं। एक तो ''हरिश्चन्द्रा ची फैक्ट्री'' जो मराठी में आई। उसे श्री परेश मोकाशी ने निर्देशित किया था जो 2010 में आई थी। वो बहुत चली और ऑस्कर में भी गई थी, हिन्दुस्तान की तरफ से लेकिन ऑस्कर उसको मिला नहीं। उसमें ये दिखाया गया कि उन्होंने कितनी कठिनाई का सामना किया भारत को पहली फिल्म ''राजा हरिश्चन्द्र'' देने के लिए। इसीलिए इस फिल्म का नाम ''हरिशचन्द्रा ची फैक्ट्री'' रखा गया। फैक्ट्री मतलब परिवार। सिर्फ 90 मिनट की मूवी है। दादा साहब ने मद्रास रेडियो को एक साक्षात्कार दिया था। उसमें उन्होंने दु:ख प्रकट

करते हुए कहा कि क्या इण्डस्ट्री को मैंने जन्म दिया था? आजकल क्या हो रहा है? वो 1928की बात है। तो अभी वो होते तो क्या कहते?

वॉर्नर ब्रदर्स ने उनकी फिल्म मँगवाई थी परंतु विश्व युद्ध छिड़ जाने के कारण वो फिल्म उन तक पहुँची ही नहीं। उस समय उनको 360 पाउण्ड का प्रस्ताव दिया गया और उनको हॉलीवुड बुलाया गया। पर उन्होंने बोला कि नहीं, मैं अपने ही देश में देश के लिए काम करूंगा, और एक यज्ञ किया और उसमें न सिर्फ अपनी बल्कि अपने पूरे परिवार की आहुति दी। 74 वर्ष की आयु में वो डायबैटिक कोमा में चले गये। 16फरवरी 1944 में उनका देहावसान हो गया।

प्रश्न :- क्या दादा साहब के कार्यों और उनके योगदान के विषय में सबको सचेत करने हेतु कोई कार्य किया जा रहा है?

श्री पुसलकर :- मैं और मेरी पत्नी एक टॉक शो कर रहे हैं दादा साहब के विषय में मराठी और अंग्रेजी में।

परंतु हिन्दी में भी होना चाहिए, क्योंकि दादा साहब हिन्दी सिनेमा के जनक थे और हिन्दुस्तान में ज्यादातर लोग हिन्दी में ही सुविधा महसूस करते हैं।

हाँ, बिल्कुल हम हिन्दी में भी करेंगे। हमें रेमण्ड स्कूल में आमंत्रित किया गया है जिसमें मैं दादा साहब के बारे में और मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती बाई फाल्के के विषय में बातचीत करेंगे। इस तरह लगातार दस शोज हैं, सिर्फ मुम्बई में ही। बाहर भी लोग बुलाते हैं कभी-कभी, पर ज्यादातर हमें अपने खर्चे से ही जाना होता है पर हमारा उद्देश्य दादा साहब फाल्के के कार्यों को सबके सामने लाना है और ईश्वर की कृपा से हमारी रोज़ी-रोटी इस पर निर्भर नहीं है। पर हमें कुछ पैसा प्रोजेक्ट्स के लिए चाहिए। इन्टरनेशनल अवेयरनेस मिशन द्वारा कुछ कार्य किये जा रहे हैं। सुप्रसिद्ध मूर्तिकार श्री वाघ ने दादा साहब फाल्के की कांस्य मूर्ति बनाई है और उन्हीं के रिश्ते के भाई व हमारे सहकर्मी श्री वीरेन्द्र नायक ने एक वेबसाइट बनाया है www.dpiam.org.in जिसमें दादा साहब के विषय में लगभग सभी महत्वपूर्ण जानकारियाँ है। हमने यू-ट्यूब में भी 18मिनट की अंग्रेजी में एक वार्ता दादा साहब के विषय में अपलोड की है।

चाय की चुस्कियों के बीच इस साक्षात्कार का अत्यन्त सुखद अनुभव रहा। पुसलकर दम्पति की आत्मीयता और सरलता ने यह अनुभव ही नहीं होने दिया कि वो इतने महान परिवार से संबंध रखते हैं।

प्रसन्न मन से मैंने विदा ली, पर कुछ बातें बहुत आश्चर्यजनक थीं मेरे लिए, पहली-जिनके भगीरथ प्रयास, अथक परिश्रम, त्याग और बलिदान के कारण आज भारतीय सिनेमा अपने भव्य रूप में स्थापित है। बड़े-बड़े नायक, महानायक, नायिका इत्यादि जिस फिल्मजगत के कारण नाम, ख्याति और करोड़ों रुपये कमा रहे हैं, उसी फिल्मजगत के जनक, दादा साहब फाल्के के परिवार से आज एक भी सदस्य इस क्षेत्र में नहीं है। इससे पता चलता है कि केवल दादा साहब ही नहीं, बल्कि उनका पूरा परिवार और कुटुम्ब ही कितना सरल और सहज है, जो कला को कला के स्थान पर और अत्यधिक व्यावसायिकता से दूर रखना चाहता है।

दूसरी- हमारी हिन्दी फिल्म इंडस्ट्री में प्रतिवर्ष ऐतिहासिक व महान् व्यक्तित्वों पर न जाने कितने बायोपिक्स (जीवन चित्र) बनाये जाते हैं परन्तु भारतीय सिनेमा के जन्मदाता दादा साहब के ऊपर ही किसी ने आज तक कोई बायोपिक क्यों नहीं बनाई?

तीसरी- बातों-बातों में पता चला कि दादा साहब का परिवार दादा साहब को भारत का सर्वोच्च सम्मान ''भारत रत्न'' दिलवाने हेतु आन्दोलन कर रहा है। आश्चर्य है, यह सम्मान भारतीय सिनेमा से प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े लोगों को मिल चुका है। जैसे श्री सत्यजीत राय, सुश्री लता मंगेशकर और श्री भुपेन हजारिका। फिर दादा साहब, जो हिन्दी सिनेमा के जनक व संस्थापक हैं, उन्हें ये सम्मान अब तक क्यों नहीं मिला?

आशा है, आने वाले दिनों में दादा साहब के संघर्ष और बलिदान को समझा जाएगा और उन्हें भारत के सर्वोच्च सम्मान ''भारत रत्न'' से अवश्य नवाज़ा जाएगा।

- असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन
जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें!

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आलेख

ठुमरी, कथक नृत्य और तबले के अन्तर्संबंधों पर एक अंतरदृष्टि

पं. विजयशंकर मिश्र

(कुमुद दीवान फाउंडेशन एवं कथक केन्द्र (दिल्ली) द्वारा आयोजित परिसंवाद में पढ़े गये पत्र का अविकल रूप।)

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्राचीन काल से ही भारतीय जनजीवन में सामाजिक, धार्मिक और मांगलिक पर्वों, त्योहारों एवं उत्सवों आदि में कैशिक वृत्ति का आश्रय लेकर नृत्य, गान का प्रस्तुतिकरण अप्सराओं, गणिकाओं और व्यावसायिक नर्त्तकियों द्वारा करने का प्रचलन शुरू से ही रहा है। तात्पर्य यह कि ठुमरी और कथक नृत्य के जिस रिश्ते पर आज हम बात कर रहे हैं, वह रिश्ता अतीत में अटूट और अभिन्न था। पेशेवर नर्त्तकियाँ भावाभिनय के लिये प्राय: ठुमरी जैसी गान विधा का ही चयन करती थीं और ठुमरी का गायन करते समय बैठकर ही सही भावाभिनय भी किया करती थीं। बावजूद इसके कि ठुमरी गायन के विकास में अनेक पुरुषों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है, ठुमरी मूल रूप से नारी प्रधान विधा ही मानी गई है। क्योंकि, इसका मूलभाव ललित श्रृंगार ही रहा है। अत: ठुमरी गायन और उस पर भाव प्रदर्शन मध्य काल से ही होता रहा है। सुनने में आश्चर्यजनक लगेगा और अविश्वसनीय भी... लेकिन यह सच है कि, ठुमरी कथक नृत्य और तबला–इस समाज में तब से प्रचलित है, जब इनका यह नामकरण भी नहीं हुआ था। ठुमरी शब्द का प्रथम उल्लेख सत्रहवीं शताब्दी में मिलता है, तबले का आधुनिक रूप अठारहवीं शताब्दी में विकसित हुआ और कथक नृत्य का नामकरण बीसवीं शताब्दी में हुआ। लेकिन, सांगीतिक समाज में इनकी उपस्थिति बहुत पहले से रही है। चौदहवीं, पन्द्रहवीं शताब्दी तक इनकी नींव पड़ चुकी थी... बीजारोपण तभी हो गया था, विकसित होने में, पुष्पित और पल्लवित होने में समय लगा। आखिर बिंदादीन महाराज और उनके पूर्वज कथक नृत्य ही तो करते थे! भले ही उसका नाम कुछ भी रहा हो उस समय!

कहते हैं कि लखनऊ में जब मौरिस कॉलेज की स्थापना हुई– यह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की–आजादी के पहले की बात है– तब वहाँ–नृत्य की शिक्षा देने के लिये पं. शंभु महाराज के सगे मामा पं. रामदत्त (रामदास) मिश्र को आमंत्रित किया गया था। उस समय इस नाच का पाठ्यक्रम आदि भी बन रहा था। अत: इस नाच का नामकरण होना आवश्यक था। तब यह विचार सामने आया कि कत्थकों द्वारा किये जाने वाले इस नृत्य को कथक कहा जाये। और, इस विचार को सर्वसम्मति से मान लिया गया। आज भी कथक नृत्य को कई जगहों पर कत्थक नृत्य ही कहा जाता है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि– ''कथा कहे सो कथक कहावे''– जैसे जिस वाक्य को कथक नृत्य से जोड़ा जाता है, वह वाक्य वस्तुत: कथक नृत्य नहीं, कत्थक नृत्यकारों के संबंध में कहा गया है। इस नृत्य के माध्यम से धार्मिक आख्यानों को प्रस्तुत करने वाले ब्राह्मणों के एक विशेष वर्ग को कत्थक कहा जाता था। जातिसूचक शब्द के रूप में कत्थक शब्द का उल्लेख चौदहवीं, पंद्रहवीं शताब्दी से ही मिलना आरंभ हो जाता है। महाभारत आदि जैसे ग्रंथों में भी इसका उल्लेख हुआ है।

ठुमरी गायन, कथक नृत्य और तबला जैसे वाद्य की नींव भले ही बहुत पहले पड़ चुकी थी, किंतु इन्हें सफलता और लोकप्रियता मिली 19 वीं शताब्दी में।

इस संदर्भ में अवध के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह को भी याद करना आवश्यक है। वाजिदअली शाह के दरबार में उ.सादिक अली ख़ाँ जैसे ठुमरी गायक तथ पं. ठाकुर प्रसाद और पं. दुर्गा प्रसाद जैसे कथक नर्तक पदासीन थे। उस्ताद् सादिक अली ख़ाँ और पं. ठाकुर प्रसाद वाजिदअली शाह केगुरु भी थे। पं. ठाकुर प्रसाद के छोटे भाई पं. दुर्गा प्रसाद के पुत्र थे– पं. कालिका दीन और पं. बिंदादीन। यहाँ यह बताना भी प्रासंगिक है कि पं. बिदादीन जी ने भी उस्ताद् सादिक अली ख़ाँ से ठुमरी गायन की शिक्षा लेकर अनेक नृत्योपयोगी ठुमरियों की रचना की थी। कहते हैं कि उन्होंने लगभग पंद्रह सौ ठुमरियों की रचना की थी। उनकी दर्जनों ठुमरियाँ आज भी कथक नर्त्तकों–नर्त्तकियों में लोकप्रिय हैं। बिंदादीन महाराज की रचनाओं में कई रंग दिखते और मिलते हैं– कान्ह खेले कहाँ ऐसो होली गुइया, मोहे छेड़ो न नंद के सुनहूं छैल, छाड़ो–छाड़ो बिहारी नारी देखे सगरी, ऐसी राम हैं दुख हरन, निरतत ढंग अंग सुभंग और शेष फन डगमग्यो आदि जैसी रचनाओं के आलोक में हम कह सकते हैं कि उस काल खंड में बोल बनाव और बोल बॉट–दोनों प्रकार की ठुमरियाँ रची और गाई गई।

आरम्भिक चरण में ठुमरी गायन और उस पर भावाभिनय करते हुए आम लोगों के मनोरंजन का जो कार्य पेशेवर गायिकाएँ और नर्त्तकियाँ करती थीं, उसे बिंदादीन महाराज सहित दूसरे कत्थक कलाकारों ने खास लोगों से जोड़ा। अब उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन नहीं आत्मिक आनंद भी हो गया। उस काल में कई अश्लील ठुमरियाँ भी लिखीं और गाईं जा रही थीं। लेकिन, बिंदादीन जी सहित दूसरे कत्थक कलाकारों ने इस श्रृंगार को राधा–कृष्ण के अनन्य और अलौकिक प्रेम से जोड़ा ताकि लोगों के मन में दूषित और कामुक भावनाएँ न आ सकें।

एक ओर, लखनऊ और आस-पास के क्षेत्रों में यह सब हो रहा था तो दूसरी ओर बनारस में तबला अपना नया आकार गढ़ता हुआ संपूर्णता की ओर अग्रसर हो रहा था। ध्यान दें, तबले के बनारस बाज की स्थापना के बाद किसी और नये घराने की स्थापना आज तक नहीं हुई। जबकि, बनारस के तबला घराने की स्थापना को लगभग दो सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ऐसा इसलिए हुआ कि बनारस में आकर तबला संपूर्ण हो गया।

कथक नृत्य के साथ बनारस के तबले का नैसर्गिक संबंध है- जिसे जन्मजात भी कहा जा सकता है। बनारस घराने के तबला संस्थापक पं. राम सहायजी मूलत: कथक नर्त्तकों के परिवार से थे, और उनके बचपन में ही उनका अद्‌भुत तबला सुनकर ही तबला के लखनऊ घराने के खलीफा उ. मोदू ख़ां ने उन्हें उनके पिता पं. प्रभाष महाराज और चाचा पं. प्रकाश महाराज से अपने शिष्य के रूप में मांगा था। तात्पर्य यह कि मोदू ख़ां से सीखने के पहले ही राम सहायजी कथक नृत्य के साथ प्रभावी तबला संगति करने लगे थे।

यहाँ मैं एक तथ्य की ओर संकेत करना चाहता हूं। राम सहायजी के पिता प्रभाष महाराज थे और चाचा पं. प्रकाश महाराज थे, तो बिंदादीन जी के पितामह और पं. ठाकुर प्रसाद, पं. दुर्गा प्रसाद और मानजी के पिता पं. प्रगास महाराज थे। कहीं इन दोनों परिवारों के बीच नजदीकी रिश्तेदारी तो नहीं थी? लखनऊ वाले प्रगास जी-जिन्हें कई जगहों पर प्रकाश जी भी लिखा गया है- लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला के दरबारी नर्त्तक थे। आसिफुद्दैला के निधन के बाद जब गाजीउद्‌दीन हैदर गद्‌दी पर बैठे तब उनके दरबार में युवा राम सहाय ने सात दिनों तक तबला वादन करके अपनी भुजाओं की पूजा करवाई थी। इसलिए इन दोनों परिवारों के बीच की निकटता से इनकार नहीं किया जा सकता है।

कथक अगर एक उपज प्रधान खुला नृत्य है तो ठुमरी भी उपज प्रधान खुली गायकी। जिस समय लखनऊ में ठुमरी गायन को एक विशिष्ट शैली में ढाला जा रहा था, उसी समय बनारस सहित देश के दूसरे भागों में भी ठुमरियाँ अलग-अलग कलाकारों द्वारा अलग-अलग शैली में गायी जा रही थीं। इनमें एक बड़ा नाम बनारस के पं. जगदीप मिश्र का है- जिनसे उ.मौजुद्‌दीन खाँ और गौहरजान जैसे लोगों ने भी सीखा था। इस कड़ी में एक और नाम पं. दरगाही मिश्र जी का भी है, जिनसे विदुषी विद्याधरी देवी, जद्‌दन बाई और पं. सियाजी मिश्र ने सीखा था। पं. सिया मिश्र जी मूलत: सारंगी वादक थे। लेकिन, उन्होंने कई लोगों को ठुमरी सिखाया था- जिनमें एक बड़ नाम ठुमरी साम्राज्ञी विदुषी सिद्धेश्वरी देवी का भी है।

ठुमरी गायन का आविष्कार भले ही उ. गुलाम रसूल ने ने लखनऊ में किया लेकिन बनारस में उसकी सहादार को जन्म लेने में भी अधिक समय नहीं लगा। अवध की आरम्भिक ठुमरियाँ ब्रजभाषा में थीं। जिनका प्रचार-प्रसार वाजिद अली शाह द्वारा हुआ था। लखनऊ अग की ठुमरियाँ आज भी मशहूर हैं। लेकिन, जल्द ही ठुमरी का एक बनारसी रंग भी उभरकर सामने आया। दोनों ही जगहों पर दोनों प्रकार की ठुमरियाँ गाई जा रही थीं, अंतर केवल शब्दों के गठन, भाषा, प्रस्तुतिकरण के अंदाज का था। बनारसी ठुमरी में स्थानीय बोलियों का प्रयोग हो रहा था।

लखनऊ और बनारस में- जहाँ ठुमरियाँ को आकाश छूती लोकप्रियता मिली, वहीं कथक नृत्य की समृद्ध परंपरा थी। दोनों ने साथ मिलकर उड़ानें भरी थीं। लखनऊ में आसिफुद्दीला के दरबरी नर्त्तक पं. प्रगासजी थे तो बनारस में भी प्रभाष जी और प्रकाश जी थे, और इन तीनों के उपनाम मिश्र थे। यह मात्र संयोग था या और भी कुछ?

ठुमरी पर भाव प्रदर्शन-नृत्य से कुछ हटकर अलग विधा है। यह कतई जरूरी नहीं है कि यह भाव प्रदर्शन खड़े होकर नृत्य करते हुए ही किया जाये। ठुमरी पर बैठकर भी भाव प्रदर्शन करने की पुरानी परंपरा रही है, जो आज भी यदा-कदा दिख जाती है। इसमें पैरों की भूमिका नहीं है। नेत्र, भृकुटी, कटाक्ष, अधर, ग्रीवा, बाँह, कलाई और हस्तकों आदि के माध्यम से ही ठुमरी के शब्दों के भावों का प्रकटीकरण किया जाता है। पुराने समय में एक ही कलाकार द्वारा गायन और नर्त्तन किया जाता था। तब, ऐसा नहीं होता था कि गा कोई और रहा है नाच कोई और रहा है। अत: गायक-गायिकाएँ अलग-अलग स्वर सन्निवेशों और काकु के प्रयोग द्वारा भी अपने कंठ माधुर्य के माध्यम से इन भावों को प्रकट करते थे और हैं। और आज जब गायिकाएँ सिर्फ गाती हैं, तब भी ये भाव उनके चेहरे पर दृष्टिगोचर होते हैं।

ठुमरी की ठुमक परम्परा को अगर हम लोक में तलाशें तो इसका मूल-कृष्ण रास एवं चांचरि अर्थात् चर्चरी में मिलता है। ठुमरी का एक प्राचीन नाम चर्चरी भी था। तब, ठुमरी के साथ जो ताल बजता था, उसे भी चर्चरी कहा जाता था। जैसे धमार के साथ बजने वाले ताल को भी धमार कहा जाता है। यही चर्चरी ताल बाद में चांचर हो गया। जिसे आज दीपचंदी और जत कहा जाता है। दोनों मूलत: एक ही हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि दीपचंदी की लय थोड़ी बढ़ी हुई होती है और यह 14 मात्राओं में बजता है, जबकि जत की लय विलंबित होती है और यह 16मात्राओं में बजता है। बनारस घराने की पुरानी गायिकाएँ प्राय: 16मात्रे के जत में ही ठुमरी गाती हैं। इसमें एक गांभीर्य होता है..... ठहराव होता है..... स्वरों की गहराई में डूबने का आनंद होता है। मैं ये बातें बोल बनाव की ठुमरी के संदर्भ में कह रहा हूँ।

इसके समानांतर ही ठुमरी की एक और शैली भी विकसित हुई जिसे बोल बांट की और बंदिशी ठुमरी भी कहा गया। इसमें द्रुत ख्याल का प्रभाव दिखता है। मध्य और द्रुत लय में निबद्ध यह ठुमरी ताल और लय के साथ अठखेलियाँ करती हुई चलती है। कुंवर श्याम की बहुत मशहूर ठुमरी है 'बोल बांट की-बांट चलत मोरी चूनर रंग डारी'। बिंदादीन महाराज की 'मोहे छेड़ो ना नंद के सुनहूं छैल' को भी मैं बोल बांट की ही ठुमरी मानता हूँ। उनका एक भजन भी है- रूपक ताल में- 'ऐसो राम हैं दुख हरन।' इसे भी प्राय: लोग ठुमरी ही कहते हैं। अगर इसे आप ठुमरी कहने का हठ तो फिर बोल बाँट की ठुमरी ही कहना होगा। महाराज की एक और प्रसिद्ध रचना शेष फन डगमग्यों। यह झपताल में है। अगर इसे भी ठुमरी कहने का हठ है- तो बंदिशी ठुमरी ही कहना उचित होगा। वैसे, मेरी दृष्टि में यह सादरा है। समयाभाव के कारण मैं

ठुमरी के शाब्दिक अर्थ और व्युत्पत्ति की ओर नहीं गया, फिर भी यह जरूर कहना चाहूँगा कि ठुमरी में एक ठुमक तो होनी ही चाहिये। साथ ही 'री' रिझाने के भाव का प्रतीक है। इस दृष्टि से आधुनिक युग के कई द्रुत ख्यालों का मूल भाव ठुमरी में ही दिखता है। उदाहरण के लिये- भैरवी में-कैसी ये भलाई रे कन्हाई। पनिया भरत मोरी गगरी....

बिहाग में-लट उलझी सुलझा जा रे बालम.....

छायानट में -भरी गगरी मोरी ढुलकाये छैल.....

दरबारी कान्हड़ा में- घर जाने दे छाड़ मोंरी बैंया। आदि.....

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आखिर! यह कैसे तय हो कि यह द्रुत खयाल है, या ठुमरी या कुछ और। यह बहुत कुछ प्रस्तुतिकरण पर, शब्द संरचना पर और ताली पर निर्भर करता है। एक बहुत मशहूर रचना है- बहुत सी नर्त्तकियों ने ठुमरी कहकर इस पर नृत्य किया है- ''बैठी सोचे बृजभाम। सूनो लागे मेरो धाम। नहीं आये घनश्याम। घिरी आई बदरी।'' यह लक्ष्मण मिर्जापुरी की लिखी हुई कजरी है। लेकिन, इसका कथ्य ठुमरी के बहुत निकट का है। कथक नृत्यकारों ने इसे गाय और नाचा भी ठुमरी की शैली में है। इसलिए, उस समय तक तो इसे ठुमरी माना ही जा सकता है जब तक इस पर भाव प्रदर्शन हो रहा है।

महाराज बिंदादीन जी की एक श्रेष्ठ रचना है- यद्यपि इसे बहुत कम लोग करते हैं- ''निरतत ढंग अंग सुभंग''- यह अष्टपदी है, जबकि कई लोग इसे भी ठुमरी मानने पर अड़े हुए हैं। संत शिरोमणि सूरदास की एक अष्टपदी-नाचत सुधंग का जोड़ है यह।

सूरदास ने सैकड़ों भजनों के बीच कुछ ठुमरियों की भी रचना की है, मेरो मन कछु सकुचन लाग रहयों। एक दिवस अंबर बिन सजनी, देखन श्याम चह्यो। और, निस दिन बरसत नैन हमारे। सदा रह पावस ऋतु हम पर। जबते श्याम सिधारे। प्रज्ञाचक्षु सूरदास जी ने नायिका की मनोदशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है इसमें। इसी तरह की एक रचना मीरा बाई के नाम से मिलती है। हाँलांकि, शब्द संरचना को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि यह मीरा बाई की होगी। लेकिन, इस विवाद में न पड़ते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि शब्द और गायकी-दोनों ही दृष्टि से यह भजन कम और ठुमरी अधिक है- छाड़ों लंगर मोरी बैंया गहो ना। मैं तो नारी पराये घर की। मेरे भरोसे गोपाल रहो ना।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि ठुमरी का मूल-लोक रूप चर्चरी रहा है, और इसके साथ बजने वाला ताल भी चर्चरी था, जो बाद में चांचर कहलाया। इसे आज दीपचंदी और जत कहा जाता है। लेकिन, संगीत सृजनात्मक कला है, और हम इसके प्रवाह को शास्त्र या व्याकरण का हवाला देकर नहीं रोक सकते हैं। क्योंकि, यह अपराध होगा.... पाप होगा। वैसे भी शास्त्र कला का अनुगामी होता है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के ग्रंथों में जिस ठुमरी का उल्लेख एक राग के रूप में हुआ है, उस ठुमरी को आज पीलू, भैरवी, खमाज, काफी, सोहनी, जोगिया, देस, तिलककामोद, छायानट, दरबारी, शिवरंजनी तथा कीरवानी आदि जैसे रागों में गाया जा रहा है। इसी तरह आज की ठुमरियाँ जत और दीपचंदी के साथ-साथ अध्धा पंजाबी, कहरवा और दादरा आदि तालों में भी गाई जा रहीं हैं। हालांकि, दादरा ताल में अपेक्षाकृत कम ठुमरियां मिलती हैं, क्योंकि उसे दादरा गायकी के साथ जोड़ दिया गया है। लेकिन, फिर भी कुछ ठुमरियाँ हैं - जैसे बिंदादीन महाराज की- काहे रोकत डगर प्यारे नंदलाल मेरो.....

ठुमरी में प्रत्येक अंतरा की समाप्ति के बाद गायक लय को थोड़ा बढ़ाकर शब्दों और स्वरों के माध्यम से एक तिलस्मी तानाबाना बुनते हैं, जिसके साथ ताबलिक लग्गी-लड़ी का सुन्दर वादन करते हैं। लग्गी-लड़ी के संदर्भ में एक बात कहना चाहता हूँ कि इसकी विधिवत शिक्षा लेने पर लोगों ने अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। अत: इसकी विविधता खोती जा रही है। पिछले दिनों ठुमरी महोत्सव में एक ताबलिक को लग्गी-लड़ी की जगह रेला बजाते हुए सुना मैंने। आज ठुमरी चाहे-दीपचंदी, जत, दादरा, कहरवा या अध्धा, पंजाबी-जिस भी ताल में गाई जा रही हो- बढ़ी लय के समय कहरवा की लय कायम करके ही उसमें बोल बनाव और लग्गी-लड़ी की प्रस्तुति होती है। लेकिन मैंने पुराने लोगों को दीपचंदी और दादरा में भी लग्गी-लड़ी बजाते हुए सुना है। वे लोग जत और अद्धा पंजाबी की लग्गी-लड़ी में अंतर करते थे, तथा बंदिश का मूड और लय तथा ताल का स्वरूप देखते हुए विलंबित और द्रुत में- अलग-अलग लग्गी-लड़ी बजाते थे।

थोड़ी बातें कथक नृत्य और तबले के संबंध में भी-

कथक नृत्य के साथ तबला संगति एक कठिन विधा है। क्योंकि ताबलिक को नर्त्तक के सभी बोलों को तो बजाना पड़ता ही है, ठाठ आदि के समय खाली जगहों को भी भरना पड़ता है। इसके साथ विभिन्न वर्णों, बोलों का निकास भी एक समस्या है। एक समस्या और है कि सीखना कोई नहीं चाहता है, बजाना सभी चाहते हैं। कथक नृत्य में यह कुछ अधिक ही है। नृत्य के साथ तबला संगत करने वाला व्यक्ति कुछ दिनों बाद नृत्य का ट्यूशन करने लगता है और नर्त्तक के रूप में सफल न होने वाला व्यक्ति तबला वादक बन जाता है। दोनों का आधा-अधूरा ज्ञान बड़ी समस्या है। कथक नृत्य में कई ऐसे वर्ण हैं जो तबले में नहीं हैं- जैसे थेई, दिगदिग, तिगदा, त्राम आदि। मेरा अपना मत है कि नृत्य के बोलों को ही तबले पर बजाने की अपेक्षा उसी वजन का कोई दूसरा बोल बजा लेना ज्यादा उचित होता है। जैसे अगर नर्त्तक ने किया- दिगदिग दिगदिग थेई। तो, इसी बोल को तबले पर बजाने की अपेक्षा घातिरकिटतक धा, धिरधिर किटितक धा अथवा तिटकत गादिगन धा बजा लेना ज्यादा प्रभावी होगा।

इसी तरह तिग्दा तिग्दा थेई की जगह क्रिधा क्रिधा धा बजेगा।

कथक नृत्य में त्राम शब्द का बहुत प्रयोग होता है। उसके साथ क्ड़ान बजाना चाहिये।

धतक थुंगा पखावज का बोल है, इसलिए इसका निकास समझना होगा। धतक की जगह कतक बजेगा। थुं बायें पर खुले हाथ से बजेगा और गा की जगह दाहिने तबले पर थाप लगेगा। लेकिन, आज विपरीत स्थिति है। इसी तरह बोला जाता है- तकिट तका-जबकि बजता है कतिट कता। यह बजंत और पढ़ंत का अंतर है। अत: मैं विनम्र शब्दों में कहना चाहता हूँ कि युवा पीढी के संगीतकारों को इन विधाओं को गंभीरता से लेना चाहिये..... ■

आलेख

परम्परा और प्रयोग की कसौटी पर भारतीय संगीत और नृत्य कितना सही और कितना गलत

डॉ. जया शर्मा

साहित्य संगीत और कला में परम्परा सदैव मिलती है। तीनों के अपने-अपने आयाम हैं, विकास की अपनी-अपनी दिशाएँ हैं। साहित्य अर्थप्रधान है, संगीत ध्वनि प्रधान है और कला प्रतीक प्रधान। आज जिस भारतीय संस्कृति की हम उपासना करते हैं और उसकी प्राचीन गरिमा को हम इतना महत्व देते हैं उसे बनाये रखने में परम्परा का विशेष महत्व रहता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है इसी नियमानुसार देश की सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियों में आए बदलाव का प्रभाव कला पर भी पड़ता है। इसी धारा में बहते हुए संगीत में युगानुसार परिवर्तन होते चले आये हैं।

भारतीय परम्परा है कि ब्रह्मा द्वारा भगवान शंकर ने संगीत को सुचारू रूप में संसार के सम्मुख रखा और नारद ने उस संगीत को विद्या और कला की देवी सरस्वती से ग्रहण कर उसे स्वर्ग और धरा पर प्रसारित किया। भारत के अतिरिक्त ऐसा कोई देश नहीं जहाँ के समस्त देवता गायन, वादन और नृत्य की किसी विधा में पारंगत हों। इसी कारण भारत के जन-जन और कण-कण में संगीत के स्वर व्याप्त हैं। लोक संगीत से लेकर वैदिक संगीत तक की परम्पराओं में जितना विकास, परिवर्तन और परिवर्द्धन भारत में प्राप्त होता है, उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। क्योंकि

जीवन का सन्देश यहाँ हर कला सुनाती,
कोयल जैसे गीत कृष्ण की मुरली गाती।।
हर पग में नटराज सरीखा नृत्य बसा है,
लोककला इस धरती पर मधुरम बरसाती।।
पत्थर में भी प्राण फूंक दे शिल्पी मेरे,
इन्द्रधनुष सी छटा बिखेरे यहाँ चितेरे।।
धरती का श्रृंगार रंगोली से होता है,
चरवाहा भी रस भीना संगीत बिखेरे।।

ध्वनि प्रधान गीतों में लौकिक और शास्त्रीय दोनों प्रकार के गीतों की परम्परा होती है। गायन की शैलियाँ स्वयं परम्पराओं की प्रतीक हैं। सोने की थाली में जेवना परोसूं जितना अनेक बार गीत की टेक बन जाता है उतना ही परम्परा का बोध कराता है जिसमें आदर और प्रेमसहित भोजन परोसने का उल्लेख होता है, इसी प्रकार ''चली चली चली रे मोरा साजन खितवा की नार'' ले बजरे की रोटियाँ नींबू का आचार प्रसिद्ध लोक संगीत की अपनी एक अनूठी परम्परा है।

इसी प्रकार शास्त्रीय संगीत में ''नीर भरन और पनघट पर कन्हाई के बहियाँ मरोड़ने'' की गीत की परम्परा की बात कही गयी है, वह भी भाव और ध्वनि की परम्परा है और आज तक आधुनिक फिल्म संगीत में ''पनघट पै रोकी सैंया मरोरी बैंया'' जैसे गीतों की धूम है। अत: कला स्थिर नहीं है, निरंतर परिवर्तनशील है। युग की आवश्यकताओं और बदलते परिवेश के साथ कला में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। यदि एक युग में ध्रुवपद गायकी शिखर पर थी तो दूसरी युग में ख्याल-गायकी। ध्रुवपद गायन की संगति के लिए पखावज की आवश्यकता थी तो ख्याल-गायकी के युग में यह स्थान तबले ने ले लिया। पहले फिल्मों में शास्त्रीय संगीत पर आधरित बंदिशों की भरमार थी, तो बाद में लोक धुनों व शास्त्रीय संगीत के खूबसूरत मिश्रण से तैयार मैलोडी प्रधान संगीत छाने लगा। इस प्रकार समय की माँग के अनुसार किसी भी चीज में परिवर्तन आवश्यक होता है- ''संगीत एक बहता हुआ दरिया है, समुद्र है, पानी एक जगह रुक जाये तो सड़ने लगता है।'' परम्परा पुराने संगीत को नवीनता से जोड़ती है।

भारत के नाट्यशास्त्र में भैरव, कैशिक, हिंडाले, दीपक श्रीराग और मेघा केवल छ: रागों का ही उल्लेख है। यद्यपि स्वयं उनके विकास की भी परम्परा सदियों में रही होगी। इसके बाद वर्षों में रागों की नवीन-परम्पराएँ और शैलियाँ बनी।

विदेशी जातियों के आगमन ने हमारी संगीत परम्परा को असाधारण रूप से प्रभावित किया। अरबी और फारसी शैलियों का संयोग हमारी प्राचीन परम्पराओं को मिला उदाहरण के लिए राग कल्याण को हम सभी आज राग यमन के नाम से ही प्रयोग करते हैं। यमन एक अरबी भाषा का शब्द है। इस प्रकार हिन्दी और उर्दू काव्य तथा देशी-विदेशी राग पद्धति के मिश्रण से फ़िल्मी संगीत की जो परम्परा बनी वह नि:संदेह अत्यंत मधुर और सम्मोहक थी।

परम्परा की कड़ी में वाद्यों का भी विकास निरंतर होता जा रहा है। नए वाद्य निर्मित होते गए हैं, पुराने अपने प्रयोग में शिथिल होते गए हैं। मोहनवीणा आज एक इसका जीता जागता उदाहरण है। बाँसुरी

की परम्परा के आधार सिंधा, तुरही आदि बनते गए जिन्होंने अन्त में दूपेट, पाइप आदि का रूप लिया– इसी प्रकार गायन, वादन और नृत्य में नए–नए प्रयेग होते हैं एवं नई–नई शैलियाँ अथवा परम्पराएँ निर्मित करते हैं। परम्परा की महिमा असाधारण है और उसकी शक्ति सदा और अनंत मात्रा में साहित्य, संगीत और कला को मिलती है।

वर्तमान युग क्रांति का युग है। आज का समाज प्रगतिशील है। आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि उपकरणों के आगमन ने संगीत को 'घराना' परम्परागत के बाहर भी स्थान दिलाया है। आज विज्ञान के आविष्कार से संगीत के कार्यक्रमों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। घर पर बैठकर सभी श्रेष्ठ कलाकारों के कार्यक्रम को सुनने का सुअवसर प्राप्त होता है। फ़िल्मी–गीतों में एक से अनेक रागों के सुन्दर–सुन्दर स्वरों का प्रयोग करके उसको प्रस्तुतिकरण का आपसी उसका सम्बन्ध संगीत कला से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। आज यह आवश्यक है। कला का स्तर ऊँचा करते हुए व परम्परा को बरकरार रखते हुए अपनी सोच को लगातार नई दिशा देते चलें। और अन्त में संगीत शिक्षा और संगीत–विद्यालयों ने प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रख उसे पतन से बचाया है। विविध पारंपरिक पद्धतियों को फिर से जीवित करना चाहिए। नए बीजों को रोपना चाहिए। अपनी संगीत पद्धतियों को उन्नत बनाने के लिए पाश्चात्य देशों से मार्गदर्शन तथा सहायता प्राप्त की जा सकती है–

पाश्चात्य राष्ट्रों के संगीतज्ञों से मिलकर हम अपने संगीत में एक नवीनता को उजागर कर सकते हैं, जैसे– ओर्केस्ट्रा, वायलिन, फ्लूट, क्लेरिओनेट आदि वाद्यों को बजाने का अध्ययन करना चाहिए। वीणा झंकार, नागस्वरम मृदंगम आदि वाद्यों का वादन अध्ययन नई दृष्टि से किया जाना चाहिए। इनमें परम्परा का निर्वाह करते हुए नवीनता के अनुभव हमें मिल सकते हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी राष्ट्र एक–दूसरे की संगीत पद्धतियों से लाभ उठाकर नवीन परम्परा का विकास कर सकते हैं।

आज पं. विश्व मोहन भट्ट ने मोहनवीणा में पाँच वाद्यों का मिश्रण करके एक समधुर वाद्य को जन्म दिया तथा सितार, सरोद, रुद्रवीणा वाद्यों का मिश्रण करके भारतीयशैली में सभी संगीत प्रेमियों से इसे परिचित कराया।

आज मोहनवीणा का गॉड फादर यदि विश्वमोहन भट्ट जी को कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। परम्परा को कायम रखते हुए नवीनता पैदा करना संगीत के लिए उन्नत कदम होगा। ऐसा उनका विचार रहा।

– एसो. प्रोफेसर संगीत विभाग
आर्य कन्या पी.जी. कॉलेज हापुड़

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें– ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम– ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें– जे–191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई–6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल– 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755–2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला–संस्कृति के अछूते पहलुओं पर सर्जनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबन्ध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई, अथवा सुवाच्य लिपि में अंकित हों। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई–मेल से भी भेज सकते हैं।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें।

–संपादक

समवेत

'तन्हाई का सुकून' का विमोचन सम्पन्न

झालावाड़ / पत्रकार जितेंद्र जैकी की पुस्तक 'तन्हाई का सुकून...' का विमोचन समारोह रविवार को सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सुमर धाम आश्रम के संत धर्मदास महाराज त्यागी, शहर काजी अब्दुल रहमान, सेंट जोन्स सोसायटी के निदेशक डी.पोनंचन्य व गुरुद्वारा सिंह सभा के मुख्य ग्रंथी सरदार प्रीतम सिंह रहे। अध्यक्षता गुजरात के केंडिला जायड्स हॉस्पिटल अहमदाबाद की कस्मर केयर सर्विस डिर्पाटमेंट की प्रभारी लालिमा शर्मा ने की। सरस्वती वंदना अर्चना मालपानी ने व संचालन जाकिर खान जाकिर ने किया। इस अवसर पर पर्यटन विकास समिति के अध्यक्ष दिनेश सक्सेना, इतिहासकार ललित शर्मा, कवि राजकुमार जैन टिल्लू, जिला प्रेस क्लब के अध्यक्ष संजय बापना, पूर्व विधायक अनिल जैन, सर्व ब्राह्मण महिला मंडल की जिलाध्यक्ष सीमा शर्मा, साहित्यकार राजेंद्र तिवारी ने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम में शहर की विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक व संगीत संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

जनजातियों में गाथा-गायकी पुस्तक लोकार्पित

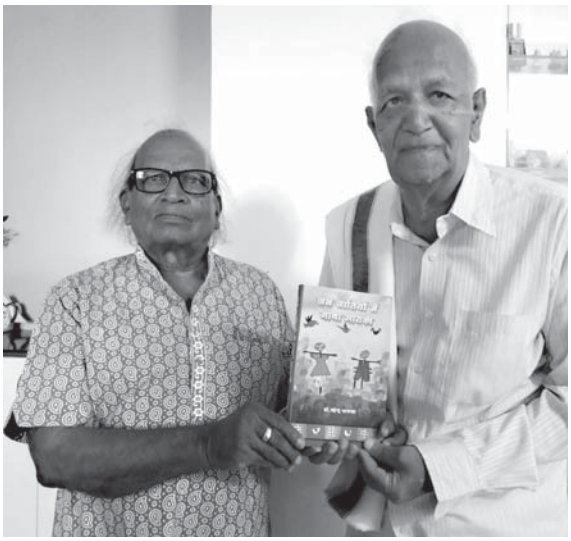

उदयपुर। जनजातियों में सदियों से पारंपरिक जो कंठासीन साहित्य संरक्षित है वही भारतीयता की असली पहचान है। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि इन जातियों की संस्कृति, जीवनधर्मिता और मानवीय मूल्यपरक जो विरासत विद्यमान है, समय रहते उसका समूचित मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है। ये विचार गुजरात के प्रख्यात समाजशास्त्री एवं शिक्षाविद् प्रो. सागरमल बीजावत ने डॉ. महेन्द्र भानावत लिखित 'जनजातियों में गाथा-गायकी' नामक पुस्तक के लोकार्पण अवसर पर व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि यह कार्य डॉ. भानावत पिछले लगभग छह दशक से करते आ रहे हैं। पहलीबार उन्होंने ही आदिवासी भीलों में प्रचलित गवरी नामक आदिम नृत्य पर प्रामाणिक शोध कार्य किया था और उसके बाद इस क्षेत्र में उनकी एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक जनजातियों में गाथा-गायकी में डॉ. भानावत ने चार खण्डों में राजस्थान की जनजातियों में प्रचलित भारत, पड़, कावड़ तथा कड़ा नामक गाथाओं का बड़ा ही कलापूर्ण, संश्लिष्ट एवं प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। आशा है, इससे प्रेरित होकर अन्य विद्वान एवं शोधकर्मी भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करेंगे।

इस अवसर पर डॉ. भानावत ने कहा कि मौखिक साहित्य के संकलन एवं संरक्षण का कार्य अत्यंत कठिन और बड़े धैर्य का है। जिस क्षेत्र अथवा जाति विशेष से जुड़ा कोई भी अन्वेषण कार्य हो उसमें वही सफल हो सकता है जिसे उस अंचल, परिक्षेत्र और जनजीवन की पुख्ता जानकारी हो और उससे भी अधिक समझने की जिज्ञासा तथा ललक हो। आज के युवाओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनकी आजीविका की है। इसलिए इस ओर बहुत कम लोग आकर्षित हो रहे हैं तब भी अनेक विश्वविद्यालयों में यह कार्य किया जा रहा है और स्वयं आदिवासियों से जुड़े विद्वान भी इस ओर काफी अच्छा काम कर रहे हैं।

रपट : डॉ. तुक्तक भानावत

पाषाण लोक का नागरिक : नीरज अहिरवार

कहा गया है कि आग, पानी और पत्थर मनुष्य के प्रागैतिहासिक मित्र हैं। पाषाणकाल से मनुष्य ने पत्थरों के साथ अपनी एक लम्बी यात्रा तय की है जो आज भी जारी है। हमारे समय के वरिष्ठ और महत्वपूर्ण कवि चद्रकान्त देवताले के तीन कविता संग्रहों का शीर्षक पत्थर से है, वे कहते हैं पत्थर से आग पैदा करने से लेकर पत्थर की घट्टी पर अनाज पीसने, पत्थर के चूल्हे पर रोटी बनाने और मंदिरों में देवताओं की मूर्ति बनाने तक पत्थर के साथ मनुष्य की यात्रा एक लम्बे आदिम सभ्यता के इतिहास से भरी हुई है।

वैसे हिंदी फिल्मों में भी पत्थर के शीर्षक से ''पत्थर और पायल'' फूल और पत्थर जैसी फिल्में बनी हैं जहाँ पत्थर की कठोरता को उदार कोमलता में तब्दील होने की कहानियाँ हैं। मुझे भारतीय तीज, त्योहारों में धार्मिकता से अधिक लोक मान्यताओं की अवधारणाओं का स्वर सुनाई देता है; जैसे एक चतुर्थी आती है जिसे ढकल्या चौथ कहा जाता है इसके पीछे भी पत्थर से जुड़ी एक लोक कथा है, जिसमें इस चतुर्थी का चंद्रमा देखना निषिद्ध है और यदि भूलवश देख लिया तो फिर पाँच पत्थर किसी के घर पर फैंकने का रिवाज़ है, ऐसा न करने पर चोरी का इल्जाम लग सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि पत्थर, मनुष्य का स्थायी मित्र है। अस्तु मानव का दायित्व है कि वह पत्थर के साथ अपनी ओर से मैत्रीभाव के साथ व्यवहार करे। इसी तरह की लोकोत्तर भावना के साथ पत्थर को अपने हृदय और आँख से तराशने के हुनरबाज 'नीरज अहिरवार' के स्क्लप्चर और मूर्तियों के शिल्प को देखकर मुझे लगता है वह 'पाषाण लोक नागरिक है' उसके स्क्लप्चर हमें न जाने कितने आयामों के साथ देखने को बाध्य करते हैं। कला के अद्भूतमर्म और सौंदर्य की दृष्टि देते हैं। इन्हें गढ़ने में उसकी उँगलियों से पहले हृदय और फिर आँखों ने इन्हें तराशा होगा। एक शिल्पी पत्थर को किस भाव के साथ देखता है, वह कला और सम्वेदना के गहरे धरातल पर उपजता है। यहाँ कुछ स्क्लप्चर का जिक्र करना प्रासंगिक होगा। यह एक स्क्लप्चर है जिसमें एक आँख को तराशा गया है मुझे इसे देखकर कई तरह के भाव मन में आए : एक तो यह कि इसमें जो आँख है वह असल में पथरा गई है जो पत्थर हो चुके समय की साक्षी हैं। इसे गौर से देखें तो लगता है ऊपरी और निचली पलक के बीच काली पुतली और पलकों पर बाल दिखाई दे रहे हैं।

इस स्क्लप्चर के तीनों हिस्सों को देखकर यह भी लगता है कि मानो तीनों लोक ही ऊपरी हिस्सा आकाशलोक, निचला हिस्सा पाताललोक है और बीच में गोल पृथ्वी हो, ऊपरी और निचले हिस्से पर जो रेखाएँ हैं वे ये मार्ग हैं जिन पर चलकर मनुष्य अपने स्थान पाता है। नीरज का यह स्क्लप्चर मात्र एक शिल्प नहीं इसमें कला के साथ दार्शनिकबोध भी है। यह एक साधक की सफलता भी है। और विवेक भी!

रपट : रागतेलंग

सम द्वारा आयोजित- होरी धूम मच्यो री

सम अर्थात् सोसाइटी फॉर एक्शन थ्रू म्यूजिक शुरूसे ही कुछ अलग तरह से काम करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। पिछले दिनों इंडिया हैवीटेट सेंटर में बनारस घराने के महान् तबला वादक पंडित बिक्कू महाराजजी की स्मृति में आयोजित अपने दो दिवसीय संगीत समारोह में एक बार फिर अपनी अलग तरह की कार्यप्रणाली का परिचय इस संस्थान ने दिया। कार्यक्रम का एक विषय होली रखा गया था और नाम होरी धूम मच्यो री। कलाकारों से अनुरोध किया गया था कि अलग-अलग रागों में होली विषयक रचनाओं

डॉ. मोनिका सोनी | डॉ. मोहिनी मेहरोत्रा | डॉ. सर्वरी बनर्जी

तनुश्री कश्यप इंदिरा मुखर्जी रामनारायण झा

की ही प्रस्तुति करें और कलाकारों ने इस अनुरोध का मान भी रखा। प्रथम दिन मुख्य अतिथि के रूप में प्रख्यात शिक्षाविद् श्री दयानंद वत्स और प्रख्यात संगीतकार पंडित मोहिंदर सरीनजी उपस्थित थे जिन्होंने पंडित बिक्कू महाराज जी के चित्र पर माल्यार्पण करके कार्यक्रम का शुभारंभ किया। श्री दयानंद वत्स ने सम के संस्थापक अध्यक्ष पंडित विजय शंकर मिश्र की कार्यप्रणाली और सांगतिक योगदानों की सराहना करते हुए कहा कि इन्हें तो बहुत पहले ही पद्म सम्मान मिल जाना चाहिए था। कार्यक्रम का शुभारंभ डॉ. मोहिनी मेहरोत्रा (मेरठ) के सुमधुर गायन से हुआ। मोहिनी मेरठ के विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका हैं। इन्होंने राग मारु विहाग की सुमधुर प्रस्तुति की। विलम्बित रचना एकताल में थी तो दो द्रुत रचनाएँ त्रिताल में। विलम्बित रचना के शब्द थे- होरी खेलन आये श्याम रंग भरी झोरी में। द्रुत रचनाओं के शब्द थे- देखो धूम मचायो और रंग रसिया आया रे। दोनों ही रचनाएँ सुंदर थीं और मोहिनी ने सुंदरता के साथ उन्हें प्रस्तुत भी किया। मोहिनी शब्दों का भावानुरूप और स्वरों का शब्दानुरूप प्रयोग करती है। बिल्कुल न ये संगीतकारों के साथ बिना किसी पूर्वाभ्यास के अपनी सुंदर प्रस्तुति देकर मोहिनी मेहरोत्रा ने सबको प्रभावित किया। इनके साथ तबले पर उदय शंकर मिश्र और हारमोनियम पर जाकिर धौलपुरी ने काफी सूझबूझ युक्त संगत किया। इसके बाद युवा पीढ़ी की प्रखर गायिका तनुश्री कश्यप ने राग पूरिया धनाश्री की सुविचारित प्रस्तुति की। तबले पर उनके छोटे भाई दिनेश कश्यप थे जो स्वयं पंजाब घराने के युवा हस्ताक्षर हैं। तनुश्री के गायन में ग्वालियर और बनारस घराने का गंगा-जमुनी संगम दिखता है। तनुश्री ने विलंबित एक ताल की रचना दैया री मैं न जाऊंगी होली खेलन को-से-अपने गायन की शुरुआत की। इसके बाद द्रुत त्रिताल में पं. रामरंग की रचना मो पे ना रंग डारे की भी उन्होंने सुंदर प्रस्तुति की। अपने आकर्षक स्वर लगाव और अलंकृत तथा तैयार तानों के लिए तनुश्री काफी प्रशंसित हुईं। पहले दिन का समापन कार्यक्रम कैराना घराने के युवा गायक श्री राम नारायण झा का था। श्री झा ने राग भिन्न षड्ज को अपनी प्रस्तुति के लिए चुना। विलंबित एक ताल औ द्रुत त्रिताल दोनों ही रचनाएँ शब्द और स्वर की दृष्टि से उच्च कोटि की थीं। राग की सिलसिलेवार बढ़त और धीर गंभीर आलाप तथा तेजतर्रार तानों के लिए राम नारायण काफी सराहे गये। सुकांतो वाजपेयी ने अच्छी तबला संगति की और हारमोनियम संगति जाकिर धौलपुरी ने की।

समारोह का दूसरा दिन सुप्रसिद्ध गायिका, लेखिका, विचारक, विदुषी कुमुद दीवान की अध्यक्षता में शुरू हुई। डॉ. कुमुद दीवान ने महाराज जी के चित्र पर माल्यार्पण करने के बाद उनकी और उनके पौत्र पंडित विजय शंकर मिश्र की परंपरा के विषय में विस्तार से प्रकाश डालते हुए सम के प्रयासों की सराहना की। आज की पहली कलाकार विदुषीइंद्रा मुखर्जी ने ठुमरी और दादरा के माध्यम से होली के रंगों से सभी को सराबोर कर दिया। काफी की होली ठुमरी-कौन तरह से तुम खेलत होरी और फिर दादरा बरजोरी करो न मोसे होली में- के माध्यम से इंद्रा ने अच्छा बोलबनाव करते हुए अपनी कल्पशीलता का बहुत अच्छा परिचय दिया। परिपक्व गायकी है इनकी। पंचकूला से आई और दिल्ली में अपनी पहली प्रस्तुति दे रहीं डॉ. मोनिका सोनी का गायन लोगों के दिलों में उतर गया। उन्होंने राग चारुकेशी, ताल रूपक में मध्यलय की रचना- रंग न भावे से अपने गायन की शुरूआत की। भावपूर्ण आलाप के बाद घुमावदार तानों का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने लोगों को चमत्कृत कर दिया। उनकी तानें काफी कठिन और तैयार हैं। बाद में इसी रचना का विस्तार उन्होंने द्रुत त्रिताल में किया- रंग न भावे सखि मोहे। मोनिका के गाने में ताजे हवा के झोंके की ताज़गी थी। उनका गला जिस तरह से घूम रहा था वह सचमुच उनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक था। उनके गायन को उभारने में युवा ताबलिक सचिन शर्मा का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा जिन्होंने काफ़ी सूझबूझयुक्त संयत संगत की। हारमोनियम पर ज़ाकिर धौलपुरी ने भी अच्छा साथ निभाया। इस दो दिवसीय भव्य समारोह का भव्य समापन डॉ. शर्वरी बनर्जी के आकर्षक और सुरीले गायन से हुआ। शर्वरी ने काज़ी नज़रूल इस्लाम के एक होली गीत से अपने गायन की शुरूआत जो राधा-कृष्ण के प्रेम के रंग में रंगा हुआ था- बृज गोपी खेले होरी। इसके बाद ब्रज की होली-अब के फाग- की आकर्षक प्रस्तुति करने के पश्चात् उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखित एक होली गीत सुनाया। समापन में उन्होंने भगवान् शंकर के होली खेलने का वर्णन किया- होली खेले मसाने में। तबले पर पंडित उदय शंकर मिश्र और हारमोनियम पर ज़ाकिर धौलपुरी ने काफी अच्छी संगत की। सम के इस आयोजन ने होली के सुरीले रंगों से अपने श्रोताओं, दर्शकों को रस विभोर कर दिया। इस समारोह में तनुश्री कश्यप, मोहिनी मेहरोत्रा, राम नारायण झा, मोनिका सोनी और ज़ाकिर धौलपुरी को संगीतरत्न सम्मान से सम्मानित किया गया तो विदुषी इंद्रा मुखजी और विदुषी शर्वरी बनर्जी को संगीत भूषण सम्मान से। कार्यक्रम का संचालन और धन्यवाद ज्ञापन सम के संस्थापक अध्यक्ष पंडित विजय शंकर मिश्र ने किया।

रपट : पं. विजयशंकर मिश्र

■

अल्लामा इक़बाल की पुण्यतिथि पर यादे इक़बाल में चारबैत मुक़ाबला आयोजित

मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी संस्कृति विभाग के द्वारा विश्वविख्यात शायर अल्लामा इक़बाल की बरसी पर यादें इक़बाल के अन्तर्गत 'चारबैत मुकाबला' 21 अप्रैल, 2019 को शाम 7.30 बजे राज्य संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल में प्रमुख सचिव, संस्कृति विभाग श्री पंकज राग के मार्गदर्शन व उपस्थिति में आयोजित किया गया। कार्यक्रम के प्रारम्भ में मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी की सचिव डॉ. नुसरत मेहदी ने सभी कलाकारों का स्वागत पुष्पगुच्छ से किया एवं कार्यक्रम की रूपरेखा पर प्रकाश डाला।

डॉ. नुसरत मेहदी ने अपने संबोधन में कहा कि मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी द्वारा अल्लामा इक़बाल की पुण्य तिथि एवं जन्म तिथि पर कार्यक्रम किये जाते हैं उन्होंने आगे कहा कि तराना-ए-हिन्द 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' के रचयिता इक़बाल की बरसी पर उर्दू की पुरानी रिवायत को फिर से ज़िन्दा करने के उद्देश्य से चारबैत मुक़ाबला आयोजित किया गया है। चारबैत शायरी की ही एक विधा है इसके हर बन्द में चार मिसरे होते हैं। इस फन को बचाने के लिये मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी, संस्कृति विभाग द्वारा प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसके लिये हमारी अदवी संस्थाओं और व्यक्तिगत तौर पर हम लोगों को आगे आना होगा। चारबैत मुक़ाबले में तीन स्थानीय चारबैत पार्टियों अंजुमन-ए-गुलिस्ताने चारबैत, बज़्म-ए-शाहिद चारबैत पार्टी एवं बज़्म-ए-मसूद रज़ा चारबैत ने भाग लिया। तीनों पार्टियों ने चारबैत मुकाबले में जो कलाम सुनाया वह इस तरह है-

1. ***अंजुमन-ए-गुलिस्ताने चारबैत पार्टी***
   मरहबा-मरहबा सरकार मदीने वाले
   हम भी हैं तालिब-ए-दीवार मदीने वाले
   अल्लाह रखे अच्छा तुम को मेरे घर आना
   बढ़ जाएगा ऐसे ही हम दोनों में याराना
   बाली सी उमरिया है पतली सी कमरिया है
   चन्दन सा बदन तेरा रे सोने की गुजरिया है
2. ***बज़्म-ए-मसूद रज़ा चारबैत पार्टी***
   एक तिशना लब ने बढ़क सागर उठा लिया
   हर गुल हवस ने मयकदा सर पर उठा लिया
   इस क़दर रोया कि हिचकी बन गई सय्याद की
   लाश जब निकली क़फ़स से बुलबुले नाशाद की
   खुद सोचना तुम दिल में इंसाफ जरा करना
   अच्छा नहीं आशिक से मिल-मिल के दगा करना
3. ***बज़्म-ए-शाहिद चारबैत पार्टी***
   फ़िर चौदहवीं के चाँद में वह याद आए हैं
   महसूस हो रहा है गले से लगाए हैं
   तुझसे किया प्यार मैंने तुझसे वफ़ा की
   यह मेरी ख़ता थी यह मेरी ख़ता थी

राज्य संग्रहालय में आयोजित 10 वें स्पंदन सम्मान समारोह में रचनाकार सम्मानित

श्री असग़र वज़ाहत को निरंतर सृजनशील वरिष्ठ साहित्य साधना के लिए स्पंदन कथा शिखर सम्मान, श्री उदयन वाजपेयी को कविता संग्रह 'केवल कुछ वाक्य' के लिए स्पंदन कृति सम्मान, श्री प्रेम जनमेजय को व्यंग यात्रा पत्रकारिता के लिए स्पंदन साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान, श्री आलोक चटर्जी को रंगकर्म के लिए स्पंदन कला सम्मान, श्री महेश दर्पण को आलोचना कर्म के लिए स्पंदन आलोचना सम्मान, श्री पंकज सुबीर को 'अकाल में उत्सव' उपन्यास के लिए स्पंदन कृति सम्मान एवं श्री थवई थियाम को स्पंदन युवा सम्मान से सम्मानित किया गया।

रपट : शुभम चौहान, अतुल एवं राहुल

जीवन परिचय

श्रीमती लक्ष्मी वाकणकर

अमरावती में श्री मल्लारी वेणी माधव एवं श्रीमती लक्ष्मी ताई ताटके के घर में 27.10.1927 को लीला ताटके का जन्म हुआ। परिवार सुसंस्कृत एवं परिश्रमी था। पिताजी अभिभाषक के कार्य के साथ शिक्षा के क्षेत्र में आपने विद्यालय प्रारंभ कर शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया। एक पुत्र और दो पुत्रियों में लीला छोटी कन्या थी। लीला की प्राथमिक से बी.ए. तक का शिक्षण निजी शिक्षण संस्थाओं में संपन्न हुआ। कॉलेज में जाने से पहले पिताजी ने एक प्रस्ताव लीला के सामने रखा कि आपका मित्र गजानंद का बी.एस सी. का शिक्षण नियमित करने के लिए उसका शुल्क जमा कर देंगे क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। गजानंद पढ़ने में होशियार था। यह प्रस्ताव लीला ने स्वीकार किया कि मैं बी.ए. स्वाध्यायी रूप में करूँगी। आप गजानंद की फीस जमाकर इसका शिक्षण नियमित करवा देवें। इस प्रकार आपने मित्र की चिंता की और लीला ने बी.ए. स्वाध्याय के रूप में पूर्ण किया। मैट्रिक पास करने के पश्चात् वर्धा में राष्ट्र सेविका समिति के शिविर में गई वहाँ वं. मौसी जी केळकर से परिचय हुआ और उनके व्याख्यान सुनने के पश्चात् राष्ट्र सेविका समिति के कार्य करने का मार्गदर्शन मिला। साथ-ही-साथ बी.ए. प्रायवेट के रूप में करती रही। समिति कार्य के लिए पूर्ण विदर्भ संभाग के विभिन्न गाँवों एवं कस्बों में जा-जा कर समिति का कार्य किया।

श्री शिवाजी राव पटवर्धन एक कुशल एवं समाजसेवी डॉक्टर थे, उन्होंने एक दिन लीला से कहा कि आपको मेरे साथ जगदंबा कुष्ठ निवास का प्रारंभ किया है वहां देखने के लिए आओ। वे वहां प्रतिदिन उपचार के लिए जाते थे। महाशिवरात्रि के दिन मृणालिनी, कुसुम, लीला और सेविका उन महारोगियों के आश्रम में कीर्तन करने के लिए गये। वहाँ के सृष्टि सौंदर्य से हम सभी खुश थे लेकिन हमारा आनंद उस आश्रम में रहने वाले महारोगियों को देखकर जिनके नाक, कान, ओठ, अंगुलियाँ, हाथ-पाँव नहीं थे उन्हें देखकर हम जो काम करते थे और गर्व था समाप्त हो गया कि कितने व्यथित रहते हैं और भगवान शिव के मंदिर में कीर्तन की व्यवस्था व्यवस्थित सजाकर की है और सुंदर भजन गा रहे हैं। लीला के मन में सात वर्ष तक महारोगियों के आश्रम में काम करने की इच्छा हुई, किंतु पिताश्री ने कहा कि तुमने बी.एड. किया है। तुम नौकरी करके जो भी राशि आयेगी उससे तुम उन महारोगियों की मदद कर सकोगी। उन्होंने 'गुजराती हाईस्कूल अमरावती' में शिक्षिका के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया उससे प्राप्त राशि का उपयोग महारोगियों की सहायता एवं समिति के प्रवास एवं कार्य के लिए उपयोग में लाया जाता था। लीला को तैरना, साइकिल चलाना, सभा में बौद्धिक देना, लाठी चलाना, तलवार जांबियां चलाना व सीखाना भी आता था। वाकणकर जी का घर पर बहुत ही कम रहना होता था। सास-ससुर की देखभाल करना, ननद को शिक्षण का ध्यान रखना एवं वाकणकर जी के शिष्यों को मातृत्व प्रेम देने का कार्य भी कुशलता से किया जाता था। सास-ससुर के जाने के पश्चात् वाकणकर जी घर आते थे तो आई का बैग प्रवास के लिए तैयार रहता था और आई घर आती थी तो वाकणकर जी का बैग तैयार रहता। कभी-कभी दोनों प्रवास पर रहते थे। घर शिष्यों के हवाले रहता था। कभी भी किसी में भेदभाव नहीं होता था कलाभवन सबका और सभी कलाभवन के यह भावना थी।

(सौजन्य : श्री कैलाश पाण्डे)

समवेत

नये लागों को संगीत से जोड़ने के सद प्रयास

मौसमी कुंडू संगीत को समर्पित नायिका हैं। उनके साथ एक अच्छी बात यह है कि वे स्वयं गाने के साथ-साथ दूसरे संगीतकारों को भी अवसर देने दिलाने के लिए प्रयासरत रहती हैं। श्रुति बैठक नाम से ये छोटे-छोटे आयोजन करती रहती हैं। इस बार यह आयोजन बड़े रूप में हैवी टेंट सेंटर में संपन्न हुआ। मेघ सुंदर मुखर्जी अच्छे और सुरीले वायलिन सुंदर आलाप और जोड़ के बाद विलंवित तथा दुत विताल में दो अच्छी नातें और उसके साथ सुंदर तानों और तिहाईयों की आकर्षक प्रस्तुति की। तबले पर पंडित शैलेद्र मिश्र की संगति काफी आकर्षक और समझबूझ युक्त थी।

इस शाम की दूसरी प्रस्तुती कुछ प्रयोगात्मक थी- उप शास्त्रीय गायन और सरोद की जुगल नदी कलाकारों के मौसमी कुंडू (गायन पर) और प्रभात कुमार (सरोंद पर)तबले पर उस्ताद अख्तर इसन थे। शुरूआत रागझिंझोटी और ताल दीपचंदी की ठुमरी से हुआ आन्जा सजन घर मेरे।

इसके बाद पहाड़ी में दादर्रा-मोरी छोटी डंगरिया ओर ठुमरी और दादरा में दोनो ही कलाकारों ने अत्यंत सुरीलेपन और सुरीलेपन का परिचय दिया। मिश्र तिलक का कामोद के झूले झूला धीरे थोड़ा अलग सा अवसर निकाला और गीत को गत में रूपांतरित करके कुछ तानों और तिहाईयों की सुंदर पुस्तुति की। समापन मैरवी की मशहूर दादरा से हुआ हमरी अटरिया पे आजा सांवरिया-देखा देखी तनिक हो जायें।

फोटो-दीर्घा

कला समय टीम का भीमबैठका भ्रमण

26 अप्रैल, 2019

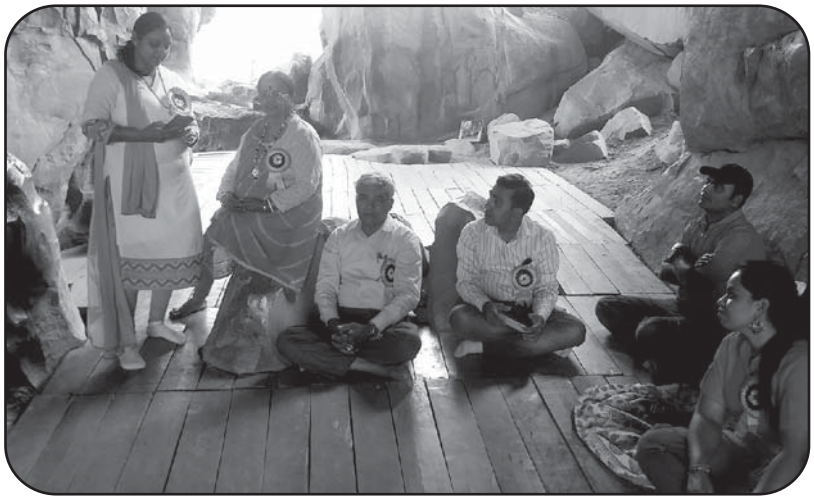

आपके पत्र

पत्रिका के बहाने

आदरणीय श्रीवासजी,

कला समय का फरवरी-मार्च 2019 का ताजा अंक मिला। उसी बड़ी ताजगी के साथ इसे मैं देख-पढ़-लिख गया हूं। यह अंक ही नहीं, हर अंक ही कला समय का चितेरा बन धनुषित हुए बड़े सलीके से, बड़े करीने से, पाठकों तथा कला-रसिकों की नब्ज पर सवार बना मनानंद-घनानंद किये रहता है।

आवरण के आगे-पीछे के डॉ. रेखा भटनागर के चित्र कला की अनेक अबोल कनखियां लिये सुलोचित हैं वहीं आवरण का पार्श्व डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' की काव्य-धड़कन जैसे वास्तु-सिद्धांतों से ही निराला बन निपजा है। उनकी कविता में 'आखर को अधर से रंगने, नख बरन का कागज लेकर बिन ढक्कन का पेन उठाकर खत लिखने तथा जीभ घुमाकर चिपकाने का मन करने' जैसे कड़ावे हिंदी काव्य मंजूषा में जैसे अभिनव मोती बन लालमलाल बने हैं। इस अंक में रंगमंचीय हलचल को लेकर दयाप्रकाश सिन्हा से आपकी लंबी बातचीत तब से लेकर अब तक के रंगमंच से जुड़े रंगकर्मियों और मंचधर्मियों पर पारदर्शी प्रभाव लिये है। सिन्हाजी ने छेड़ा किसी को नहीं किन्तु छोड़ा भी नहीं है। उल्लेखनीय यह ठीक ही कहा- 'फिल्म में आदमी अपने आकार से बहुत बड़ा, टेलीविजन में बहुत छोटा लेकिन थियेटर में अपने कद में दिखाई देता पड़ता है।' (पृ. 22)

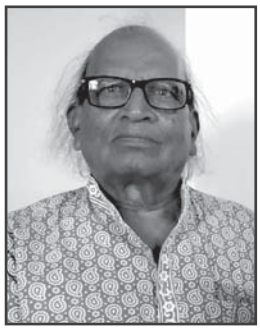

एक बड़े इशारे में उन्होंने कान्यो मान्यो कुर्र कर कह दिया- 'बहुत से लोगों को जानता हूं जो अनुदान प्राप्त करने की कला में प्रवीण होते हैं। थियेटर में नहीं होते, कला में नहीं होते, मगर वो भी अनुदान ले लेते हैं और उनको काफी अच्छे अनुदान भी मिलते हैं। कलाकारों को राशि बहुत कम मिलती है। फोकस इस बात पर है कि कितना पैसा बचाया जा सके। इस बात पर नहीं कि अधिक से अधिक दर्शकों को लाकर उनके सहयोग से नाटक करें।' (पृ. 23)

आज के समय में छोटे सम्मान तो इधर-उधर जैसे कुकुरमुत्तों की तरह फैले हुए हैं पर बड़े सम्मानों पर भी यदाकदा ऊंगली टेढ़ी होती लगती है। ऐसे में सिन्हाजी ने कठोर कटु बड़ी निर्भयता के साथ सम्मान का धंधा करने वालों की नकेल खींची और यह ठीक ही कहा- 'सम्मान की बिना दौड़ के ही सम्मान मिलते हैं तब तो सम्मान है। दौड़ में तो सम्मान, सम्मान ही नहीं रह जाता।' (पृ. 22)

अशोक वाजपेयी पर मुकेश कुंदन थामस का संस्मरणात्मक आलेख भी इस अंक की उपलब्धि है। वाजपेयीजी से पहली बार जब वे भारत भवन में थे तब राजस्थान साहित्य अकादमी की ओर से 2-3 नवंबर 1985 को लेखकों का जो प्रतिनिधिमंडल भोपाल गया, उसमें नंद चतुर्वेदी, ऋतुराज, विजेन्द्र, डॉ. जयसिंह 'नीरज', डॉ. रमासिंह, डॉ. हेतु भारद्वाज, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ. नवलकिशोर और मैं भी था। सचिव डॉ. लक्ष्मीनारायण नंदवाना ने बताया कि भारत भवन में डॉ. वाजपेयी ने जो भावभीना स्वागत किया और साहित्यकारों के दायित्व पर जो उद्बोधन दिया वह वर्षों तक चर्चा का केन्द्र बना। यहीं दो दिनों के साहित्यिक समागम में मुख्यत: हरिनारायण व्यास, त्रिलोचन शास्त्री, पूर्णचंद रथ, डॉ. रामदत्त आदि से सार्थक संवाद रहा। इस बीच हमने सांची का स्तूप भी देखा। लौटते समय कुछ देर देवास में गीतकार नईम के घर काव्य-गोष्ठी का जो आत्मीय आनंद उमड़ा उसे कई दिनों तक नईम अमिट उपलब्धि के रूप में याद दिलाते रहे। अब तो वे बातें भूलीबिसरी सी हो गई हैं जब कई साथी स्मृतिशेष हो गए हैं। अन्य रचनाओं में संगीता सक्सेना का अमीर खुसरो का भारतीय संगीत में योगदान, माधवी नानल का आश्रम भजनावली का सुनहरा इतिहास, राधेलाल बिजघावने का लोककलाओं के अस्तित्व बोध की चिंताएं तथा डॉ. उर्मिला शर्मा का किशनगढ़ चित्रशैली आलेख भी कम उपयोगी और पठनीय नहीं हैं।

-डॉ. महेन्द्र भानावत

उदयपुर (राज.) मो. 9351609040

अनुरोध

कृपया कला समय के सदस्य बनें। इस अनुष्ठान को आगे बढ़ायें। कला समय के सदस्य लेखकों, कलाकारों की रचनाओं को प्राथमिकता से स्थान दिया जावेगा। कला समय में समीक्षार्थ कला, संस्कृति और विचार पर केन्द्रित अपनी कृतियाँ हमें प्रेषित करें। समीक्षा हेतु कृति दो प्रतियों में भेजें। भेजी हुई पुस्तकें लौटाना मुमकिन नहीं होगा।

-सम्पादक

स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बनाया जाता है – सिमोन द बोवुआ

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

– निर्मिश ठाकर

सूर्य बाला

पीनाज़ मसानी

शोभना समर्थ

सितारादेवी

www.rntu.ac.in Follow on us

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Only Private University in MP to be ranked among Top 200 Universities of the country by nirf

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY

JOIN THE ONLY PRIVATE UNIVERSITY IN MP TO GET TOP 200 RANKING IN NIRF 2019

Prominent features

- **32 Skill Courses** in India's **first skill-based university**
- Only private university in Madhya Pradesh to set up **Atal Incubation Centre** : **AIC - RNTU Foundation** supported by **NITI Aayog, AIM**
- **9 Centres** of **Excellence and Skills** housed in RNTU
- Dedicated resources for conducting research in emerging technologies like **IOT, Block chain**
- Established **Pradhan Mantri Kaushal Kendra** in the University for hands on experience
- **International collaboration** for greater exposure
- **Huge in-house** funding to promote research
- **15 International** & **30 National** Level collaborations
- **Project Unnat Bharat** awarded by **MHRD** to the University

ADMISSIONS OPEN 2019-2020

Engineering & Technology

B.E.
CS | EC | ME | Civil | EEE

M.Tech
ME (Production, Thermal)
VLSI | CSE | Wir. Mob. Comm.
Power Systems | CE

Diploma
Civil Engg.
Mechanical Engg.
Electrical & Electronics Engg.

Management
MBA | BBA
M.Phil. (Management)
PG Diploma (Urban, Rural Development)

Education
B.Ed | B.P.Ed | M.Ed
B.Ed (Part Time) | M.Phil.

Mass Communication & Journalism
BJMC, MJMC, B.A. | M.A.
(Mass Communication & Journalism)

Paramedical Science

Arts
B.A. Hons. | M.A. (Hindi, English, History, Political Science, Economics, Sociology)
MSW | B.Lib. | M.Lib
M.Phil. (Selective Branch)

Law
B.A. (LL.B.) | LL.B. | LL.M.

Computer Science & IT
DCA | PGDCA | BCA
B.Sc. (IT) | B.Sc. (CS)
M.Sc. (IT) | M.Sc. (CS)
M.Phil. (IT) | M.Phil. (CS)

Nursing
B.Sc. (Nursing) | GNM

Commerce
B.Com. (Plain)
B.Com. (C.A., Taxation, Hons.)
M.Com. (Taxation, Management)
M.Phil. (Commerce)

Agriculture
B.Sc. (Agri.) | M.Sc. (Agri.)

Science

Physics
B.Sc. | B.Sc. Hons. | M.Sc. M.Phil.

Chemistry
B.Sc. | B.Sc. Hons. | M.Sc. M.Phil.

Mathematics
B.Sc. | B.Sc. Hons. | M.Sc. M.Phil.

Biology
B.Sc. (CBZ/Micro-bio./ Biotech)

Botany
M.Sc. | M.Phil.

Zoology
M.Sc. | M.Phil.

Electronics
M.Phil.

Diploma Yoga/PG Dip. Yoga | B.Sc (Yoga) | M.sc (Yoga) |
Certificate in Dresser/Yoga Trainer *M.P.T. | B.P.T. *B.M.L.T. | D.M.L.T. |
Diploma in Dialysis Tech. | Diploma in Cath. Lab Tech *Subject to Approval

MICRO FOCUS
Hewlett Packard Enterprise

Industry Oriented New Age Skills Offered in collaboration with
Certificate, 1 year & 2 years programs offered in following disciplines :
Cyber Security | Quality Engineering
Big Data | Machine Learning | Artificial Intelligence & many more...

Ph.D. & M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

AJEE
AISECT GROUP OF UNIVERSITIES JOINT ENTRANCE EXAM

25th MAY	26th MAY	26th MAY to 26th JUNE
Last Date of Registration for Online Exam	Offline Registration Starts	Date of Online Exam

₹ 500
Registration Fee

शिक्षा मित्र Scholarships

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Admission Helpline : 9893350135, 9977414175, 9131797517, 8878852348

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-2700400, 2700413
City Office: 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016, Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email: info@rntu.ac.in

विश्व प्रसिद्ध भीमबैठका गुफा में
"पद्मश्री" डॉ. वाकणकर के समक्ष सितार को
झनकृत करती प्रख्यात सितार वादिका स्मिता नागदेव
(एक अविस्मरणीय दुर्लभ चित्र 1987 का है)

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास